प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री,
सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

प्रथम बार : १९५०
मूल्य
तीन रुपये

मुद्रक :
तीर्थराम
कैपिटल प्रेस,
दिल्ली

विषय-सूची

१.	बंजारा	१	२३.	सोने के पर	६२
२.	तण्डुल-नालिका का मूल्य	७	२४.	चुहिया और बिल्ली	६४
३.	स्वर्ण-मृग	१०	२५.	गोह	६६
४.	मेढा	१३	२६.	न घर का न घाट का	६८
५.	कुरंग-मृग	१५	२७.	सेवा का बदला	६९
६.	बैल और सूअर	१६	२८.	बड़ा कौन है ?	७४
७.	बटेर	१७	२९.	गिद्ध	७६
८.	तित्तिर	१९	३०.	चाण्डाल का जूठा भोजन	७८
९.	बक	२१	३१.	राजा दधिवाहन	८०
१०.	कबूतर	२४	३२.	पतिव्रता नारी	८५
११.	वेदर्भ-मन्त्र	२६	३३.	पत्नी-प्रेम	८८
१२.	सत्याग्रह	२९	३४.	बन्दर और मगरमच्छ	९१
१३.	फल	३५	३५.	ब्राह्मण की बैल-याचना	९३
१४.	पंचायुध	३६	३६.	कुटिल व्यापारी	९५
१५.	असात मंत्र	३९	३७.	मनुष्यों की करनी	९७
१६.	मृदुलक्षणा	४२	३८.	धर्मान्ध	९८
१७.	कंजूस	४५	३९.	भात की पोटली	१०६
१८.	नाम-सिद्धि	५१	४०.	मरे राजा से भी भय	१०८
१९.	हल की फाल	५३	४१.	कला की प्रतियोगिता	१०९
२०.	विद्या-व्रत	५५	४२.	मांगनेवाला अप्रिय होता है	११४
२१.	जैसा भोजन वैसा काम	५७	४३.	परोपकार का बदला	११६
२२.	मित्र-धर्म	५९	४४.	पेट का गुन	११९

४५. स्त्री का आकर्षण १२०
४६. बंदरों के भरोसे बाग १२३
४७. उल्लू और कौआ १२४
४८. कुरुधर्म जातक १२५
४९. सब में शक्ति है १३६
५०. दरिद्र का दरिद्र १४०
५१. राज-भक्ति १४१
५२. पराक्रम की विजय १४३
५३. सदाचार की परीक्षा १४७
५४. माली की लड़की १४८
५५. सिंह और कठफोड़ा १४९
५६. आम की खोज १५०
५७. क्षमा की पराकाष्ठा १५२
५८. लोह कुम्भी १५६
५९. चन्द्रमा शशांक क्यों है १५९
६०. कणवेर १६२
६१. सच्ची भार्या १६६
६२. अंधविश्वास १६८
६३. तपस्वी का आत्म-गौरव १७१
६४. कुटिल जटिल १७३
६५. फूलों के चार गजरे १७५
६६. स्वर्ण भार्या १७७
६७. कौआ और मोर १८०
६८. सर्वज्ञता के लिए १८१
६९. सन्धि-भेद १८४
७०. शोकातुर पिता १८५
७१. धोनसाख जातक १८७
७२. उरग जातक १८९
७३. चिड़िया ने बदला लिया १९३
७४. मन्त्र-ग्रहण १९५
७५. फूल की गन्ध की चोरी २००
७६. वट्टक जातक २०१
७७. गृद्ध जातक २०२

प्रस्तावना

पालि वाङ्मय में तिपिटक [त्रिपिटक] का विस्तार इस प्रकार है[1] —

१. सुत्तपिटक, निम्नलिखित पांच निकायों में विभक्त हैं :

(१) दीघनिकाय, (२) मज्झिमनिकाय, (३) संयुत्तनिकाय, (४) अंगुत्तरनिकाय (५) खुद्दकनिकाय :

खुद्दकनिकाय के १५ ग्रन्थ हैं।

(१) खुद्दकपाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक, (५) सुत्तनिपात, (६) विमानवत्थु, (७) पेतवत्थु, (८) थेरगाथा, थेरी-गाथा, (१०) जातक, (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदामग्ग, (१३) अपदान, (१४) बुद्धवंश, (१५) चरियापिटक।

२. विनयपिटक निम्नलिखित भागों में विभक्त हैं :

(१) महावग्ग, (२) चुल्लवग्ग, (३) पाराजिका, (४) पाचित्तियादि, (५) परिवार पाठ।

३. अभिधम्मपिटक में सात ग्रन्थ हैं :

(१) धम्मसंगणि, (२) विभंग, (३) धातुकथा, (४) पुग्गलपञ्ञत्ति, (५) कथावत्थु, (६) यमक, (७) पट्ठान।

इसी तिपिटक में एक प्राचीन वर्गीकरण है। उसके अनुसार बुद्धवचन इन नौ भागों में विभक्त है :

(१) सुत्त, यह शब्द सूत्र तथा सूक्त दोनों संस्कृत शब्दों का रूपान्तर समझा जाता है। कुछ लोगों ने पालि सुत्त को सूत्र कहा है। दूसरों ने आपत्ति की है : क्योंकि यह पाणिनि के व्याकरण सूत्रों की तरह छोटे आकार के नहीं हैं, इसलिए इन्हें सूत्र न कहकर सूक्त कहना चाहिए, जैसे वेद के सूक्त।

संस्कृत बौद्ध साहित्य में सूत्रों को सूत्र ही कहा गया है। इधर संस्कृत

१ सुमंगल विलासिनी (दीघनिकाय अट्ठकथा) की निदानकथा।

साहित्य में भी आश्वलायन सूत्र आदि गृह्य सूत्रों से अपेक्षाकृत समान होने के कारण सूत्रों को सूत्र कहना ही ठीक होगा। अंगुत्तरनिकाय के एकक निपात आदि में जो छोटे-छोटे बुद्धवचन हैं, वे ही वास्तव में प्राचीन सूत्र हैं। और जिन सूत्रों को सूक्त कहने की अधिक प्रवृत्ति होती है, वह इन सूत्रों पर लिखे गये वेय्याकरण (व्याख्याएँ) हैं।

यहां तो इतना ही अभिप्रेत है कि अशोक के समय से बुद्धवचन के एक अंश के लिए सुत्त शब्द व्यवहृत होता था।

(२) गेय्य—अलगद्दूपम सुत्त (मज्झिमनिकाय २२ वां सूत्र) की अट्ठकथा में लिखा है कि सूत्रों में जो गाथाओं का हिस्सा है वह गेय्य है। उदाहरण के लिए संयुत्तनिकाय का आरम्भिक हिस्सा। सभी प्रकार की गाथाओं को यदि गेय्य माना गया होता तो, उन गाथाओं का कोई पृथक वर्गीकरण रहा होता। प्रतीत होता है कि किसी खास तरह की गाथाओं की ही संज्ञा गेय्य रही होगी।

(३) वेय्याकरण—अर्थ है व्याख्या। किसी सूत्र का विस्तारपूर्वक अर्थ करने को वेय्या कहते हैं। भविष्यद्वाणी के अर्थ में जातक में व्याकरण शब्द आया है; किन्तु इस शब्द का न तो उस व्याकरण से कुछ संबन्ध है और न संस्कृत वा पालि के व्याकरण साहित्य से।

(४) गाथा—बुद्धघोषाचार्य ने धम्मपद, थेरगाथा और थेरीगाथा की गिनती गाथा में की है। इनमें से थेरगाथा में अशोक के भाई वीतसोक की गाथाएं उपलब्ध हैं।[1] इससे तथा इसकी रचना-शैली से सिद्ध है कि इस ग्रंथ का वर्तमान रूप भगवान् के परिनिर्वाण के तीन-चार सौ वर्ष बाद का है।

(५) उदान—मूल अर्थ है उल्लास—वाक्य। खुद्दकनिकाय में जो उदान नामक ग्रंथ है उसके अतिरिक्त सुत्तपिटक में जहां-तहां और भी अनेक

---

१ इमस्मिं बुद्धप्पादे अट्ठारस वस्साधिकानं द्विन्नं वस्स सतानं मत्थके धम्मासोक रञ्ञो कणिट्ठत्थअत्ता हुत्वा निब्बत्ति। तस्स वीत सोकोति नामं अहोसि (वीतसोक थेरस्स गाथा वण्णना)।

उदान आए हैं। यह कहना कठिन है कि इनमें से कितने उदान अशोक से पूर्व के हैं।

(६) इतिवुत्तक—खुद्दकनिकाय का इतिवुत्तक १२४ इतिवुत्तकों का संग्रह है। इनमें से कुछ अशोक के समय के और पहले के भी हो सकते हैं।

(७) जातक—यह कथा-साहित्य सर्वप्रसिद्ध है। अनेक दृश्य सांची,[1] भरहुत[2] आदि के स्तूपों की वेष्टनी (रेलिङ्ग)पर खुदे मिलते हैं जो कि १५० ई० पूर्व के आसपास के हैं। इस पर विस्तृत विचार आगे किया ही गया है।

(८) अब्भुतधम्म—अर्थ है असाधारण धर्म। हो सकता है कि भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों में जो असाधारण बातें रहीं उनका वर्णन करने वाला कोई ग्रंथ रहा हो, किन्तु इस प्रकार का कोई ग्रंथ न अब प्राप्य है, न आचार्य बुद्धघोष के ही समय में रहा है। उन्होंने लिखा है "भिक्षुओ,ये चार आश्चर्य अद्भुत धर्म आनन्द में हैं। इस क्रम से (अर्थात् बुद्ध के इस वाक्य के अनुसार) जितने भी आश्चर्य अद्भुत धर्मों से युक्त सूत्र हैं, वे सभी अब्भुतधम्म जानने चाहिए।"[3]

(९) वेदल्ल—महावेदल्ल और चुल्लवेदल्ल दो सुत्त हैं। इन दोनों सूत्रोंमें (१) महाकोट्ठित तथा सारिपुत्र के (२) भिक्षुणी धम्मदिन्ना तथा उसके पूर्व आश्रम के पति के प्रश्नोत्तर हैं। इनसे वेदल्ल नाम के संग्रह में किस प्रकार के सूत्र रहे होंगे, इसका कुछ अनुमान लग सकता है। प्रतीत होता है कि भगवान् बुद्ध के साथ श्रमण-ब्राह्मणों के जो प्रश्नोत्तर होते थे, वे वेदल्ल कहलाते थे।

सारे तिपिटक में वा नौ अंगों वाले बुद्ध वचन में, कितना वास्तव में

---

१. सांची—भेलसा (प्राचीन विदिशा) के पड़ोस में।

२. भरहुत—इलाहाबाद से १२० मील दक्षिण-पश्चिम एक गाँव।

३. चत्तारो मे भिक्खवे, अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्देति आदिनय-पवत्ता सब्बेपि अच्छरियब्भुतधम्मपटिसंयुत्ता सुत्तन्ता अब्भुत धम्मंति वेदितब्बा।

बुद्ध तथा उनके शिष्यों का उपदेश है और कितना पीछे की भर्ती, कहना कठिन है।

बुद्धवचन का नौ अंगों के रूप में जो प्राचीनतर वर्गीकरण है, उसमें भी जातक का समावेश होने से उसकी प्राचीनता का महत्व स्पष्ट ही है। जब हम देखते हैं कि साँची, भरहुत आदि स्थानों में अनेक जातकों के चित्र उत्कीर्ण हैं, तब उनकी प्राचीनता तथा महत्व और भी बढ जाता है।

जातक शब्द का अर्थ है जन्म सम्बन्धी। विकासवाद के अनुसार एक फूल को विकसित होने के लिए, उस पुष्प की जाति विशेष के अस्तित्व में आने में लाखों वर्ष लग जाते हैं। तब क्या कोई भी प्राणी साठ या सत्तर, अधिक-से-अधिक सौ वर्ष के जीवन में बुद्ध बन सकता है? उसे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक जन्म धारण करने ही होंगे। गौतम बुद्ध को भी धारण करने पड़े। बुद्ध होने से पूर्व अपने सब पिछले जन्मों तथा अन्तिम जन्म में उनकी संज्ञा बोधिसत्व रही। बोधि का अर्थ है बुद्धत्व और सत्व का अर्थ प्राणी—बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी। जातक में बोधिसत्व के पांच सौ सैंतालिस जन्मों का उल्लेख है।

कुल जातक वास्तव में कितने हैं? अर्थात् बोधिसत्व ने बुद्ध होने से पूर्व ठीक-ठीक कितनी बार जन्म ग्रहण किया है? कहना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

संस्कृत बौद्धसाहित्य में जातक-माला नाम का एक ग्रंथ है, जिसके रचयिता आर्यशूर हैं। तारानाथ ने आर्यशूर और प्रसिद्ध महाकवि अश्वघोष को एक ही कहा है। लेकिन यह ठीक नहीं। आर्यशूर की जातकमाला में कुल ३४ जातक हैं।

इसी प्रकार श्रीईशानचन्द्र के अनुसार महावस्तु नामक ग्रंथ में लगभग ८० कथाएँ हैं।

थेर-वादियों वा सिंहल, स्याम, बर्मा, हिन्दचीन आदि देशों के बौद्धों की परम्परा है कि जातकों की संख्या ५५० है।

तिपिटक में जिन जातक आदि ग्रन्थों का उल्लेख आया है, उन सभी

ग्रन्थों के साथ उनकी अट्ठकथायें अथवा उनके भाष्य भी सम्बद्ध हैं। धम्मपद के साथ धम्मपद अट्ठकथा है और जातक के साथ जातक-अट्ठकथा। मूल जातक धम्मपद की ही तरह गाथायें मात्र हैं। यदि किसी को जातक-अट्ठकथा से कथा ज्ञात हो तो जातक से भूली हुई कथा याद आ सकती है। किन्तु यदि कथा मालूम न हो तो अकेली कथायें कहीं-कहीं एकदम निरर्थक हैं। बिना जातकट्ठकथा के जातक अधूरा है।

जातकट्ठकथा का रचयिता, संग्रहकर्त्ता अथवा सिंहल से पालि में अनुवादक कौन है? महावंस में लिखा है कि आचार्य बुद्धघोष अभिधम्म-पिटक के प्रथम ग्रंथ धम्मसंगणि पर अत्थसालिनि टीका लिख चुकने के बाद भारत से सिंहल गये। सिंहल जाने का उनका एकमात्र उद्देश्य था सिंहल भाषा में सुरक्षित अट्ठकथाओं का पालि में अनुवाद करना। ये अट्ठ-कथाएं, कहते हैं महेन्द्र के साथ भारत से सिंहल पहुंची, इन्हीं का बुद्धघोष ने महास्थविर संघपाल की अधीनता में महाविहार, अनुराधपुर में रहकर अध्ययन किया। जब वह विसुद्धिमग्ग नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखकर अपनी उन अट्ठकथाओं को पालिस्वरुप देने की अपनी योग्यता प्रमाणित कर चुके, तभी सिंहल के भिक्षुसंघ ने उन्हें उन सिंहल अट्ठकथाओं को पालि में अनुवाद करने की आज्ञा दी।

इन जातक-कथाओं का अन्तिम संग्रह या सम्पादन किसी के भी हाथों-हाथ हुआ हो; किन्तु इनकी रचना में तथा इनके जातकट्ठकथा का वर्तमान रूप धारण करने में कई शताब्दियां अवश्य लगी होंगी। कुछ-न-कुछ जातकों का उल्लेख तो स्थविरवाद तथा महायान के प्राचीनतम साहित्य में है। उनकी यथार्थ संख्या कह सकना कठिन है।

कुछ ऐसा अबौद्ध साहित्य है जो यद्यपि भगवान् बुद्ध से पूर्व का समझा जाता है, लेकिन उसकी परम्परा भले ही पुरानी रही हो, उसका सम्पादन पीछे ही हुआ है। उस साहित्य में और बौद्धकथा साहित्य में जो साम्य है, वह जहां एक-दूसरे की लेन-देन हो सकता है, वहां कहीं संदिग्ध

सम्भव है कि एक ही मूलकथा ने दोनों जगह भिन्न-भिन्न रूप धारण किया है।

यह जातक संग्रह अपने वर्त्तमान स्वरूप में कम-से-कम लगभग दो हज़ार वर्ष पुराना है।

ईसा की प्रथम शताब्दी में आन्ध्र राजाओं के समय गुणाढ्य नाम के किसी पण्डित ने पैशाची भाषा में 'बृहत्कथा' नाम का एक ग्रन्थ लिखा था। पैशाची भाषा या तो आधुनिक दरदी की पूर्वज भाषा थी या उज्जैन के पास की एक बोली[1]। यह गुणाढ्य कौन थे, कहना कठिन है। इनकी 'बृहत्कथा' एकदम अप्राप्य है। अबतक किसी के देखने में नहीं आई। इससे नहीं कहा जा सकता कि वह 'बृहत्कथा' कितनी बृहत् थी और उसमें क्या-क्या था। बाण के हर्षचरित में, दंडी के काव्यादर्श में, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी में और सोमदेव के कथा सरितसागर में उसका प्रमाण है। सोमदेवने, जो कि एक बौद्ध था अपना कथा सरितसागर "बृहत्कथा" से ही सामग्री लेकर लिखा और सोमदेव के कथा सरितसागर में अनेक जातक कथाएँ विद्यमान हैं। इससे अनुमान होता है कि "बृहत्कथा" का आदिस्रोत जातक-कथाएँ ही रही होंगी।

प्रसिद्ध पंचतन्त्र की अधिकांश कथाओं का मूल जातकों में ही है।[2] उसका कर्त्ता ब्राह्मण था। बौद्ध कथाएँ जहाँ जन-साहित्य हैं और उनका उद्देश्य जन-साधारण का शिक्षण रहा है, वहाँ पञ्चतन्त्र के ब्राह्मण रचयिता ने उन कथाओं का उपयोग केवल राजकुमारों को शिक्षित करने के लिए किया है।

हितोपदेश में श्लोकों की अधिकता है। वे सचमुच हितोपदेश हैं। उसमें पञ्चतन्त्र से सहायता ली गई है और अनेक जातक-कथाएँ

---

१ भारत भूमि और उसके निवासी (पृ० २४६) जयचन्द्र विद्यालंकार।

२ वक जातक (३८)। २ वानरिन्द जातक (५८)। ३ कूट वाणिज जातक (९८)। ४ मिति चिन्ति जातक (११४) आदि।

विद्यमान् हैं।

आख्यायिका-साहित्य में वैताल पञ्चविंशति का भी स्थान है। इसमें पता नहीं, कोई जातक कथा है या नहीं। सिंहासन द्वात्रिंशिका, शुक सप्तति आदि और भी कई ग्रंथ हैं। जैन वाङ्मय में भी आख्यायिका साहित्य है ही। इस सारे साहित्य में और बौद्ध जातक कथाओं में कहीं-न-कहीं साम्य अवश्य है, जो अधिकांश में जातक-कथाओं के ही प्रभाव का परिणाम है।

जातक-कथाओं में कई कथाएं ऐसी हैं जो पृथ्वी के प्रायः हर कोने में पहुँच गई हैं। पंचतन्त्र ही इन कथाओं को फैलाने का मुख्य साधन बना प्रतीत होता है। छठी सदी में पचतन्त्र का एक अनुवाद पहलवी अथवा प्राचीन फारसी में हुआ। यह अनुवाद खुसरो नौशेरवां के राजवैद्य की कृति था। इसी अनुवाद से पंचतन्त्र का एक अनुवाद सीरिया की भाषा में हुआ, जो जर्मन अनुवाद के साथ १८७६ में लीपजिग में छपा। पंचतन्त्र ही का एक अरबी अनुवाद लगभग ७५० ई० में अलमोकाफा के पुत्र अब्दुल्ला ने किया, जिसका नाम था कलेला दमना।[1] यह कथा-संग्रह अरबों को बहुत प्रिय हुआ। आगे चलकर जब अरब यूरोप के पश्चिमी देशों में फैले तो इन्हें इन कथाओं को यूरोप में फैलाने का श्रेय मिला।

१८१६ में पंचतंत्रके अरबी अनुवाद कलेला दमना का अंग्रेज़ी अनुवाद हुआ। १४८३ में अरबी अनुवाद से ही पंचतन्त्र जर्मन में अनूदित हुआ। १०८० में इस अरबी अनुवाद का ग्रीक भाषा में एक अनुवाद हो चुका था। १८६६ ई० में इस ग्रीक अनुवाद से लातीनी भाषा में अनुवाद हुआ। इसी प्रकार १५वीं सदी के अंत में पंचतंत्र के अरबी अनुवाद का फारसी अनुवाद हुआ जिसका नाम है अनवार सुहेली। १६४४ में इस अनवार सुहेली से लिव्रे दे ल्यूमिरे (Livre des Lumieres) नाम से फ्रेंच अनुवाद

---

१ दोनों नाम पंचतन्त्र के करटक और दमनक के विकृत रूप हैं।

हुआ। १८७२ में ग्रीक अनुवाद से इटली की भाषा में अनुवाद हुआ। १२५० में अरबी अनुवाद से ही हीब्रू में अनुवाद हुआ; और इसी सदी के अंत में हीब्रू से लातीनी में भी। फिर आगे चलकर १८५४ में साधी अरबी से भी एक अनुवाद हुआ।

ईसप् की कथाओं के नाम से जिन कथाओं का यूरोप में प्रचार है और जिनके कुछ अनुवाद हमारी भारतीय भाषाओं में, यहां तक कि संस्कृत में भी छप चुके हैं,[1] उनका मूल उद्गम-स्थान कहां है? श्री रीज़डेविड्स उन कथाओं के बारे में विस्तृत अन्वेषण करने के बाद इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि उनमें से किसी कथा का किसी ईसप् से संबंध नहीं है।[2] ईसप्-कथाओं का प्रथम संग्रह मध्यम युग में हुआ। उनमें से अधिकांश का मूल स्थान हमारी जातक कथाएँ ही हैं, और बहुत सम्भव है कि लगभग सभी का मूल-स्थान भारतवर्ष है।[3]

पंचतंत्र के जिस अरबी अनुवाद का हमने ऊपर उल्लेख किया है वह ८ वीं शताब्दी में बगदाद के ख़लीफ़ा अलमंसूर के दरबार में लिखा गया था। इसी ख़लीफ़ा के दरबार में एक ईसाई पदाधिकारी था, जो बाद में संन्यासी हो गया। उसका नाम है डमसकस का सन्त जान (St. John of Damascus)। उसने ग्रीक भाषा में अनेक किताबें लिखीं। उन्हीं में एक किताब बरलाम एंड जोसफ है। इस कथा के जोसफ कौन हैं? स्वयं बुद्ध। ऊपर कह आए हैं कि बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व अपने पिछले और अंतिम जन्म में बुद्ध बोधिसत्त्व कहलाए। यह बोधिसत्त्व ही बोसत और फिर जोसफ बना। सन्त जान की इस किताब में बुद्ध का आंशिक चरित्र और अनेक

१. अहमदनगर के श्री बालकृष्ण गोडबोले ने संस्कृत में अनुवाद किया था।

२. श्री मैकडानल के अनुसार बाब्रियू ने २०० ई० में ईसप् कथाओं को लिखा। (इंडियाज़ पास्ट पृष्ठ १२५)।

३. बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज़ पृष्ठ ३२।

जातक-कथाएं हैं।

अरबी के कलेला दमना की तरह यह ग्रंथ लोगों को बहुत प्रिय हुआ और इसका प्रचार भी बहुत हुआ। अनेक यूरोपियन भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया। यह ग्रंथ लातीनी, फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश, जर्मन, अंग्रेजी, स्वेडिश और डच में प्राप्य है। १२०४ में आइसलैंड की भाषा में भी इसका अनुवाद हुआ और फिलिपाइन द्वीप में जो स्पेन-तगालो बोली जाती है, उस तक में यह प्रकाशित हो चुका है।

कितने ही आश्चर्य की बात प्रतीत होने पर भी यह सत्य है कि सन्त जोसफत के रूप में भगवान् बुद्ध आज सारे रोमन कैथोलिक ईसाइयों द्वारा स्वीकृत[1] हैं, आदृत हैं और पूजे जा रहे हैं।

इन जातक-कथाओं के प्रसार और प्रभाव की कथा अनन्त प्रतीत होती है। एक इटालियन विद्वान ने सिद्ध किया है कि किताब उल् सिन्दबाद की अनेक कथाओं का और अलिफलैला की अनेक कथाओं का भी मूल-स्रोत जातक-कथाएं ही हैं।

जिस समय हूण पूर्वी यूरोप में गये तो वे भी अपने साथ जातक-कथाओं में से कुछ ले गये। बहुत सी ऐसी कथाएं जिनका मूल जातक कथाओं में है सलाव लोगों में मिली हैं।

बौद्ध देशों में जातक-कथाओं का प्रचार है ही।

इस प्रकार जातक वाङ्मय चाहे उसे प्राचीनता की दृष्टि से देखें, चाहे विस्तार की और चाहे उपदेशपरक तथा मनोरंजक होने की दृष्टि से, वह संसार में अपनी सानी नहीं रखता।

अट्ठकथानुसार इन कथाओं में से तीन-चौथाई कहानियां जेतवन-विहार में कही गईं। शेष राजगृह तथा अन्य कौशाम्बी, वैशाली आदि स्थानों में।

---

१. देखो पोप सिक्सटस् (१५८५-९०) की २७ नवम्बर की डिग्री जिसमें भारत के बरलाम और जोसफत को कैथोलिक ईसाइयों के सन्तों के रूप में स्वीकृत किया है।

प्रायः सभी जातकों के आरम्भ में "पूर्व काल में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय" आता है। पता नहीं, यह ब्रह्मदत्त कोई राजा हुआ है या नहीं ? कुछ लोगों का ख़याल है कि 'जनक' की तरह यह ब्रह्मदत्त भी अनेक राजाओं की पदवी रही होगी। हमारा तो ख़याल है कि कथाओं में ब्रह्मदत्त का मूल्य क़था आरम्भ करने के लिए एक निश्चित शब्द-समूह से अधिक कुछ नहीं, जैसे उर्दू की प्रायः हर कहानी 'एक दफ़ा का ज़िकर है' से आरम्भ होती है और अङ्गरेजी की 'वन्स अपान ए टाइम' (Once upon a time) वैसे ही हमारी अनेक जातक कथाओं के लिए 'पूर्व काल में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय' है।

जब कभी कहा जाता है कि भारतवर्ष का सारा साहित्य परलोक चिन्तामय है, उसको इहलोक की चिन्ता ही नहीं, तो उसे अपनी और अपने वाङ्मय की प्रशंसा समझते हैं। किसी भी जाति का काम केवल परलोक-परक होने से नहीं चल सकता। भगवान् बुद्ध ने इहलोक तथा परलोक चिन्ता में समत्व स्थापित किया। यही कारण है कि जातक कथाओं को बौद्ध वाङ्मय में महत्वपूर्ण स्थान मिला और उनका विकास हुआ। जातक साहित्य जन-साहित्य के सच्चे अर्थों में जनता का साहित्य है। इसमें हमारे उठने-बैठने, खाने-पीनें, ओढ़ने-बिछाने की साधारण बातों से लेकर हमारी शिल्पकला, हमारी कारीगरी, हमारे व्यापार की चर्चा के साथ हमारी अर्थनीति, राजनीति तथा हमारे समाज के संगठन का विस्तृत इतिहास भरा पड़ा है। उस युग के भू-वृत्त के भी पर्याप्त सामग्री है। विशेष रूप से उस युग के जल-मार्गों तथा स्थल-मार्गों की।

भारतीय जीवन का कोई पहलू ऐसा नहीं जिसका लेखा इन कथाओं में न मिलता हो। यदि भविष्य में हमारा इतिहास राजाओं की जन्म-मरण तिथियों का लेखामात्र न रह कर जनता के जन्म-मरण के इतिहास के रूप में यथार्थ ढंग से लिखे जाने को है, तो प्राचीन काल के वैसे इतिहास के लिए इन कथाओं का मूल्य बहुत ही अधिक है।

यदि मनोरंजन के साथ-साथ उपदेश ग्रहण करना हो, यदि हृदय को उदार तथा शुद्ध बनाने वाली कथाओं के साथ-साथ बुद्धि को प्रखर करने वाली कथाएं पढ़नी हों, यदि अपने देश की प्राचीन आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक अवस्था से परिचित होना हो तो हम जातक-कथाओं से बढ़कर किसी दूसरे साहित्य की सिफारिश नहीं कर सकते।

इस संग्रह में जो ये थोड़ी-सी कथाएँ हैं, इनका मूल खोजना हो तो इन पंक्तियों के लेखक द्वारा अनुवादित[1] 'जातक' देखना होगा। मूल कथाओं में 'वर्तमान-कथा' और 'अतीत-कथा' प्रायः दो भाग हैं। 'वर्तमान-कथा' का मतलब है भगवान् बुद्ध के समय में घटने वाली कोई घटना। इसी घटना से प्रेरित होकर प्रायः भगवान् कहते हैं, "भिक्षुओ, न केवल अभी ऐसा हुआ है, किंतु पूर्व-जन्म में भी ऐसा हुआ है," और इस अवसर पर सुनने वालों के प्रार्थना करने पर 'अतीत-कथा' सुनाते हैं।

ऊपरी दृष्टि से देखने से जातक-कथाओं की इन 'वर्तमान-कथाओं' का ऐतिहासिक मूल्य अधिक प्रतीत होता है; किंतु ये कथाएं उतनी ऐतिहासिक नहीं, जितनी काल्पनिक हैं। 'वर्तमान-कथाओं' की अपेक्षा 'अतीत-कथाओं' का मूल्य कहीं अधिक प्रतीत होता है।

१९४१ में 'जातक' का प्रथम-खण्ड प्रकाशित हुआ। बाद में समय समय दूसरे खण्ड भी। वे खण्ड आकार-प्रकार और मूल्य की दृष्टि से सामान्य पाठक की पहुंच से बाहर हो गये। दो-तीन खण्ड और प्रकाशित हो जाने पर तो 'जातक' को पढ़ने का मतलब होगा लगभग साढ़े तीन हजार पृष्ठ पढ़ना।

मित्रों, विशेष रूप से श्री मार्तंड उपाध्याय, ने सुझाया कि इन जातक-कथाओं में की 'अतीत-कथाओं' में से कुछ का एक छोटा संस्करण प्रकाशित किया जाय। मेरा उत्तर था कि मूल 'जातक' का अनुवाद समाप्त हो कर प्रकाशित होने तक मैं इस काम में हाथ नहीं लगा सकता।

---

१ जातक (खण्ड १, २, ३, ४—प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

आगे चलकर भाई मार्तण्डजी का विशेष आग्रह देख मैंने यह कार्य अपने अन्तेवासिक श्री सुशीलकुमार को करने की प्रेरणा की। वे पालि लेकर साहित्य-रत्न कर चुके थे और इसलिए हर तरह से इस कार्य के योग्य थे। हर्ष है कि उन्होंने समय निकालकर इन कथाओं को लिख डाला। इन कथाओं को मूल पालि से हिन्दी में लाने का श्रेय यदि मुझे है तो इस संग्रह में इन कथाओं का जो रूप है उसका श्रेय श्री सुशीलकुमार को है। मैं अपने अनुवाद में अनुवादक की मर्यादाओं से बंधा था। सुशीलकुमार को कथाओं को अधिक-से-अधिक बोधगम्य बनाने का ध्यान था। कथाओं की भाषा को मैं भी एक बार देख गया हूँ और इसलिए अब कथाओं के वर्त्तमान रूप की सम्मिलित ज़िम्मेदारी स्वीकार करनी ही पड़ेगी।

कथाओं के शीर्षक बदल दिये गये हैं। जो पाठक इन कथाओं को मूल वृहत संग्रह में देखना चाहें उनके लिए प्रत्येक कथा का मूल नाम नीचे दे दिया गया है।

कथाएँ अपनी कथा आप कहती हैं। उनके विषय में और क्या कहा जाय? मूल वृहत-संग्रह की भूमिका से जो अंश ऊपर उद्धृत किया गया है, वही कुछ भारी हो गया लगता है।

ऊपर का कवर जिस कथा से संबंधित है वह इस संग्रह की तीसरी कथा है—स्वर्ण मृग।

साढे पांच सौ कथाओं के मूल कथा-संग्रह में से ये कुल ७७ कथाएँ ही पाठकों की भेंट हैं। पाठक दूसरे भागों में और कथाओं की भी प्रतीक्षा कर ही सकते हैं।

आगामी संग्रह अथवा इसी संग्रह के दूसरे संस्करण के लिए उपयोगी सुझावों के लिए लेखकद्वय कृतज्ञ होंगे।

बौद्ध विहार,
नई दिल्ली।

—आनन्द कौसल्यायन

जातक-कथा

: १ :

बंजारा

अतीत काल में काशी देश में वाराणसी (बनारस) नाम का एक नगर था। उसमें राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। बोधिसत्व उस समय एक बंजारे के घर पैदा हुए थे।

आयु प्राप्त होने पर उन्होंने व्यापार करना शुरू किया। वह आस-पास के ही प्रान्तों में, कभी इस प्रान्त में कभी उस प्रान्त में घूमकर व्यापार करते थे। इस प्रकार माल बेचते उन्हें कई साल बीत गए। एक बार उन्होंने सोचा—क्यों न दूर प्रदेश चलकर खूब सामान बेचा जाय, तरह-तरह के माल खरीदे जायं। इस बहाने देश-भ्रमण भी होगा।

दूर-देश व्यापार के लिए जाने का विचारकर बोधिसत्व ने नाना प्रकार के बहुत से सामान एकत्र किये। पांच सौ गाड़ियों पर उन्हें लादा। इस प्रकार एक महा सार्थवाह (काफिला) के साथ [illegible] बोधिसत्व ने यात्रा शुरू की।

उसी समय बनारस से ही एक और बंजारे के पुत्र ने पांच सौ गाड़ियों पर सामान लादकर चलने की तैयारी की। बोधिसत्व ने सोचा, "अगर यह भी मेरे साथ जायगा तो एक ही रास्ते से एक हजार गाड़ियों के जाने के लिए रास्ता काफी न होगा, आदमियों के लिए लकड़ी-पानी, बैलों के लिए घास-चारा मिलना कठिन हो जायगा। इसलिए या तो इसे आगे जाना चाहिए या मुझे।"

---

१. अपण्णक जातक। १.१.१

बोधिसत्व ने उस आदमी को बुलाकर कहा—"भाई, हम दोनों इतने जन-बल के साथ इकट्ठे नहीं जा सकते। या तो तुम आगे जाओ या मैं आगे जाऊं।"

दूसरा बंजारे का बेटा इतना अनुभवी नहीं था। उसने सोचा—आगे जाने में मुझे बहुत लाभ है। बिना बिगाड़े हुए रास्ते से जाऊंगा। मेरे बैल अछूते तृण खायंगे। अपने आदमियों को तेमन बनाने के लिए अछूते पत्ते मिलेंगे। साफ और इच्छा भर पानी मिलेगा और मन-माने दाम पर सौदा बेचूंगा। अपने लाभ की ये सब बातें सोचकर उसने बोधिसत्व को जवाब दिया—"मित्र! मैं ही आगे जाऊंगा।"

बोधिसत्व ने पीछे जाने में बहुत लाभ देखे। उसने सोचा—अगर यह बंजारा आगे-आगे जायगा तो इसकी गाड़ियों के पहियों से तथा बैल और आदमियों के पैरों से ऊबड़-खाबड़ रास्ते समतल हो जायंगे। जहां रास्ता नहीं होगा, वहाँ रास्ता बन जायगा तथा बने रास्ते और साफ हो जायंगे। मैं उसके चले रास्ते पर चलूंगा। आगे जानेवाले उसके बैल पकी-कड़ी घास खा लेंगे और मेरे बैल नये, मधुर तृण खायंगे। पत्ते तोड़े गए स्थानों पर नये उगे पत्ते साग-भाजी के लिए बड़े स्वादिष्ट होंगे। जहां पानी नहीं होगा वहां ये लोग खोदकर पानी निकालेंगे। उनके खोदे हुए कुओं, गढ़ों से हम पानी पीयेंगे। चीजों का मूल्य निर्धारित करना ऐसा ही है जैसे मनुष्यों की जान लेना। इसके आगे-आगे जाने से मुझे ऐसा नहीं करना पड़ेगा। इसके ही निर्धारित किये हुए दाम पर सौदा बेचूंगा। इतने लाभ देखकर उसने कहा—"मित्र! तुम आगे जाओ।"

"अच्छा मित्र!" कह वह मूर्ख बंजारा गाड़ियों को जोत नगर से निकला। क्रमशः एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में सामान बेचता वह मरुभूमि के निकट पहुंचा। मरु-भूमि पार कर उसे दूसरे प्रदेश में जाना था।

जिस कान्तार में वह प्रवेश करने जा रहा था वह बिना पानी का तथा भूत-प्रेतोंवाला था। कान्तार कई तरह के होते हैं; किसीमें चोरों का भय होता है, किसीमें हिंसक जन्तुओं का, कोई भूतों का कान्तार,

कोई बिना पानी का तथा किसीमें खाने-पीने की वस्तुएँ नहीं मिलतीं। उस आगे जानेवाले बंजारे के बेटे ने बड़े-बड़े मटकों में पानी भरवाकर गाड़ियों पर लदवाया। तब उस बिना पानीवाले साठ योजन के कान्तार में प्रवेश किया।

क्रमशः चलता हुआ वह बीच कान्तार में पहुँचा। उस कान्तार में रहने वाले दैत्यों ने सोचा—यदि हम इसके पानी के मटके किसी तरह फेंकवा दें तो ये लोग पानी के बिना कमजोर पड़ जायेंगे। न आगे ही जा सकेंगे, न पीछे लौट सकेंगे। तब हम इनको बड़ी आसानी से खा सकेंगे।

यह सोचकर दैत्यों के सरदार ने सफेद रंग के तरुण बैलों को सुन्दर-सुन्दर गाड़ियों में जुतवाया। धनुष-तरकस, ढाल, तलवार आदि पाँच शस्त्रों को धारण किया। नीले और सफेद कमलों की मालाएँ गले में पहनीं। बाल और वस्त्र इस प्रकार भिगो लिये जैसे अभी वह घनघोर वर्षा में से आ रहा हो। अपनी गाड़ियों के पहियों को कीचड़ लगवा दिया। तब अपने और आदमियों के साथ आगे रथ पर बैठकर राजा की तरह बंजारे के सामने दूर से आता हुआ दिखाई दिया। उसके आगे-पीछे, चलनेवाले सेवक भी उसी प्रकार भीगे केश, भीगे वस्त्र, नीले, सफेद कमलों के गुच्छे लिये, पानी तथा कीचड़ की बूँदें टपकाते हुए, बिस की जड़ें खाते हुए, इस प्रकार दैत्य सरदार के आगे-पीछे चले जैसे किसी महा-सरोवर के पास से आ रहे हों।

रेगिस्तान का बालू गरम हो जाता तथा हवा भुर्र करके चलती थी। भयानक हवा कभी आगे से चलती, कभी पीछे से चलती। जब आगे की हवा चलती तो बंजारा अपना रथ आगे करके चलता था। नौकर-चाकरों से धूल हटवाता चलता था। जब पीछे की हवा चलती तो अपना रथ पीछे करके धूल हटवाता चलता था। उस समय सामने की हवा थी, इसलिए बंजारा आगे-आगे जा रहा था।

जब दैत्य बंजारे के निकट पहुँचा तो उसने अपना रथ रास्ते से एक ओर कर लिया। आमना-सामना होने पर उसने पूछा—"कहाँ जाते हैं?"

फिर उसका निर्दिष्ट स्थान जानकर कुशल-क्षेम की बात-चीत की।

बंजारे ने भी अपने रथ को रास्ते से एक ओर कर लिया। गाड़ियों को जाने का रास्ता देकर दैत्य से बोला—"जी! हम बनारस से आते हैं। सौदा बेचने जा रहे हैं।"

"यह जो आप लोग उत्पल-कुमुद धारण किये हैं, पद्म-पुण्डरीक हाथ में लिये हैं, पानी से लथपथ बूंदें चुआते, भिस की जड़ें खाते आ रहे है, इस से तो मालूम पड़ता है कि आगे रास्ते में वर्षा हो रही है और उत्पल आदि से ढके सरोवर हैं!"—बंजारे ने जिज्ञासा की।

"जी हाँ, यह तो बिल्कुल सही बात है। वह देखिये न, सामने जो हरे रंग की वन-पाँति दिखाई दे रही है, उसके आगे के सारे जंगल में मूसलाधार वर्षा हो रही है। पहाड़ की दरारें भरी हुई हैं। जगह-जगह पद्म आदि से पूर्ण जलाशय हैं।"

"गाड़ियों में क्या-क्या सौदा जा रहा है?"—दैत्य ने पुनः प्रश्न किया।

"यही किसीमें काशी के वस्त्र हैं, किसीमें अमुक खाने की चीजें हैं किसीमें अमुक।"

"और इस पिछली गाडी में तो बहुत भारी सामान लदा है, भला क्या होगा उसमें?"

"जी, उसमें पानी है।"

"मगर अब आपको पानी का क्या प्रयोजन है? अभी तक ले आये सो तो ठीक किया, मगर इससे आगे तो इफरात पानी है। मटकों का पानी गिराकर तुम सुख से क्यों नहीं जाते?"

इस प्रकार की बात-चीत कर और "आप जाइये, हमें देर हो रही है" कहकर दैत्य चला गया। कुछ दूर जाकर वह आंखों से ओझल हो गया और अपने नगर पहुँच गया।

उस मूर्ख बंजारे ने अपनी मूर्खता के कारण दैत्य की बात मान ली। चुल्लू भर भी पानी बिना शेष रखे सब मटके फुड़वा दिये। तब गाड़ियाँ हॅकवाई। कुछ दूर जाने पर आदमियों को प्यास लगी। मगर उन्हें कहीं

भी पानी नहीं मिला। वे सूर्यास्त तक चलते रहे, शाम तक पानी न मिला। आखिरकार बैलों को खोल गाड़ियों का घेरा बना, बैलों को गाड़ियों के पहियों से बांध दिया। न बैलों को पानी मिला न मनुष्यों को भोजन। मनुष्य जहां तहां तड़पकर सो रहे। पानी के बिना वे अत्यन्त दुर्बल हो गये। रात होने पर दैत्य नगर से बाहर आये। उन्होंने सब बैलों तथा मनुष्यों को मारकर खाया। हड्डियां वहीं छोड़ चले गये।

इस प्रकार वह बंजारे का पुत्र अपनी मूर्खता के कारण अपना सब कुछ नाश कर बैठा। उनकी हाथ आदि की हड्डियां इधर-उधर बिखर गईं। पांच सौ गाड़ियां जैसी-की-तैसी खड़ी रहीं।

उस मूर्ख बंजारे के चले जाने के मास-आध मास बाद बोधिसत्व भी पांच सौ गाड़ियों के साथ नगर से निकले। क्रमशः चलते हुए उसी कान्तार के मुख पर पहुंचे। वहां उन्होंने पानी के मटकों में बहुत-सा पानी भर लिया। अपने तम्बुओं से ढिंढोरा पिटवा आदमियों को एकत्र किया। उनको हिदायत दी कि बिना मुझसे पूछे एक चुल्लू भर भी पानी काम में न लाना। जंगल में विषैले वृक्ष भी होते हैं। इसलिए किसी भी पत्ते, फूल या फल को, जिसे पहले न खाया हो, बिना मुझसे पूछे कोई न खाए।

इस प्रकार आदमियों को ताकीद कर पांच सौ गाड़ियों के साथ मरुभूमि की ओर बढ़े। जब वे मरुभूमि के मध्य में पहुंचे तब उस दैत्य ने दूर से उनको आते देखा। वह पहले की भांति राजा का कपट-रूप बनाकर बोधिसत्व के मार्ग में प्रकट हुआ। बोधिसत्व ने उसे देखते ही पहचान लिया और मन में सोचने लगे—"इस मरुभूमि में जल नहीं है। इसका नाम ही निर्जल कान्तार है। यह पुरुष निर्भय दिखाई देता है। इसकी आंखें लाल हैं। पृथ्वी पर इसकी छाया तक नहीं दिखाई पड़ती। निस्सन्देह इसने आगे गये मूर्ख बंजारे का सब पानी फिकवा, उसे पीड़ित कर, मनुष्यों-सहित खा लिया होगा, लेकिन यह मेरी पण्डिताई तथा चतुराई को नहीं जानता।"

बोधिसत्व ने दैत्य से कहा—"तुम जाओ। हम व्यापारी लोग बिना दूसरा पानी देखे पहला नहीं फेंकते। जहां दूसरा पानी दिखाई देगा, वहां

इस पानी को फेंकवा गाड़ियों को हलका कर चल देंगे।"

दैत्य थोड़ी दूर जाकर अंतर्धान हो, अपने नगर को चला गया। उसके चले जाने पर आदमियों ने बोधिसत्व से पूछा—"आर्य! यह मनुष्य कह रहा था कि यह जो हरे रंगवाली वनपाँति दिखाई देती है, उसके आगे मूसलाधार वर्षा हो रही है। ये लोग उत्पल-कुमुद आदि की मालाएं धारण किये थे, पद्मपुंडरीक के गुच्छे हाथ में लिये थे, जिनकी जड़ें वे खा रहे थे, उनके वस्त्र पानी से लथपथ थे। इसलिए आगे पानी जरूर होगा, हम पानी फेंक दें, गाड़ियों को हलका कर चलें।"

बोधिसत्व ने उनकी बात सुनकर सब गाड़ियों को रुकवा, मनुष्यों को एकत्र कराया। उनसे पूछा—"क्यों, तुममें से किसीने इस कान्तार में तालाब अथवा कोई पुष्करणी होने की बात कभी पहले सुनी थी?"

"नहीं आर्य! यही सुना था कि यह निर्जल कान्तार है।"

"अब कुछ मनुष्य कहते हैं कि इस हरे रंग की वनपाँति के उस पार वर्षा हो रही है। अच्छा तो वर्षा की हवा कितनी दूर तक चलती है?"

"आर्य! योजन भर—"

"क्या किसी एक भी आदमी के शरीर को वर्षा की हवा लग रही है?

"आर्य! नहीं।"

"काले बादल कितनी दूर तक दिखाई देते हैं?"

"आर्य! योजन भर।"

"क्या किसी एक को भी बादल दिखाई दे रहा है?"

"आर्य! नहीं।"

"बिजली कितनी दूर तक दिखाई देती है?"

"आर्य! चार-पांच योजन तक।"

"क्या किसीको बिजली का प्रकाश दिखाई पड़ता है?"

"आर्य! नहीं।"

"बादल की गरज कितनी दूर तक सुनाई देती है?"

"आर्य एक-दो योजन भर।"

"क्या किसीको बादल की गरज सुनाई दी है?"

"आर्य! नहीं।"

"तो सुनो, ये मनुष्य नहीं, दैत्य थे। ये हमारा पानी फिंकवाकर हमें दुर्बल कर खाने आये होंगे। तुम देखोगे कि आगे जानेवाले बनजारे को वे उसका पानी फिंकवाकर अवश्य खा गये होंगे। उसकी पांच सौ गाड़ियां जैसी-की-तैसी भरी खड़ी होंगी। वह बंजारे का पुत्र व्यापारकुशल नहीं था। आज तुम उसे रास्ते में देखोगे। इसलिए चुल्लू भर भी पानी बिना फेंके गाड़ियों को हांको।"

आगे पहुंचकर बोधिसत्व ने पांच सौ गाड़ियों को जैसी-की-तैसी पाया। बैलों तथा आदमियों की हड्डियां इधर-उधर बिखरी देखीं। उससे कुछ दूर बोधिसत्व ने गाड़ियां खुलवा दीं। गाड़ियों के इर्द-गिर्द घेरे में तम्बू तनवा दिये। दिन रहते ही आदमियों और बैलों को शाम का भोजन खिलाया। मनुष्यों के घेरे के बीच बैलों को बंधवाया। कुछ मनुष्यों के साथ हाथ में खंजर लिये स्वयं रात्रि के तीनों याम पहरा देते खड़े रहे। सवेरे बैलों को खुलवाया। कमजोर गाड़ियों को छोड़ उनकी जगह पाले दूसरों की मजबूत गाड़ियां लीं। कम कीमत का सौदा छोड़ उसकी जगह अधिक दामवाला सौदा लिया। तब बैलों को गाड़ियों में जोतकर आगे बढ़े। सामान को दुगुने-तिगुने दाम पर बेचकर सभी मण्डली के साथ कुशलपूर्वक अपने नगर लौट आये।

: २ :

तण्डुल-नालिका का मूल्य

पूर्व समय में काशी राष्ट्र में बनारस नाम का नगर था। वहां [illegible] राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व घोड़ों का मूल्य निर्धारित करने

२. तण्डुल-नालिजातक। १.१.५

वाले 'अर्घ-कारक' के पद पर नियुक्त थे। वह हाथी, घोड़े, मणि, सुवर्ण आदि का मूल्य निश्चित करके चीज के मालिक को चीज का उचित मूल्य दिलवाते थे।

लेकिन वह राजा लोभी था। उसने सोचा—यदि यह अर्घ-कारक इस प्रकार मूल्य निश्चित करता रहा तो थोड़े ही समय में मेरे घर का सब धन नष्ट हो जायगा। इसलिए किसी दूसरे आदमी को अर्घ-कारक बनाना चाहिए।

राजा उस समय खिड़की खोलकर राजांगणमें झांक रहा था। उसने एक मूर्ख, गंवार और लोभी आदमी को उधर से जाते देखा। मन में सोचने लगा—यह आदमी दाम लगाने का काम कर सकेगा। उसे बुलवाकर पूछा—"अरे! क्या तू हमारा दाम लगाने का काम कर सकेगा?"

"देव! कर सकता हूं।"

राजा ने अपने धन की रक्षा करने के लिए उस मूर्ख आदमी को अर्घ-कारक के पद पर स्थापित किया। वह मूर्ख आदमी घोड़े आदि का दाम लगाते समय दाम को घटाकर मन जैसा में आता, वैसा दाम लगाया करता था। उस पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण वह जो कुछ भी निश्चित करता, वही चीजों का मूल्य होता था।

उस समय उत्तरापथ का घोड़ों का एक व्यापारी पांच सौ घोड़े लेकर आया। राजा ने अर्घ-कारक को बुलवाकर घोड़ों का दाम लगवाया। उसने पांच सौ घोड़ों का दाम एक तण्डुल-नालिका निश्चित किया। "घोड़ों के व्यापारी को एक तण्डुल-नालिका दे दो" कहकर राजा ने घोड़ों को अश्व-शाला में भिजवा दिया।

व्यापारी सिर पीटकर रोने लगा—"पांच सौ बढ़िया घोड़े और उनकी कीमत एक नालिका तण्डुल!" वह पुराने अर्घ-कारक के पास गया। सारा समाचार सुनाकर उसने सलाह पूछी कि अब क्या करना चाहिए?

उसने उत्तर दिया—"उस आदमी को रिश्वत देकर उससे कहो कि "हमारे घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है, यह तो हमें मालूम हो गया;

अब हम यह जानना चाहते हैं कि आपने जो तण्डुल-नालिका लिया है, उसका क्या मूल्य है ? क्या आप राजा के सम्मुख यह होकर कह सकेंगे कि एक तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ? यदि कहे कि 'कह सकता हूं' तो उसे राजा के पास लेकर जाओ। मैं भी वहां आऊंगा।"

घोड़ों के व्यापारी ने 'अच्छा' कहकर बोधिसत्व की सलाह को स्वीकार किया। उसने अर्घ-कारक को रिश्वत देकर यह बात कही। रिश्वत पाकर उसने उत्तर दिया—"हां, तण्डुल-नालिका का मोल कर सकता हूं।"

"तो राज-कुल चलें" कहकर व्यापारी उसे राजा के पास ले गया। बोधिसत्व तथा दूसरे अमात्य भी वहां आये।

राजा को प्रणाम कर घोड़ों के व्यापारी ने कहा—"देव ! यह तो मैंने जाना कि पांच सौ घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है, अब कृपा कर अर्घ-कारक से पूछें कि एक तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है।"

राजा भीतर के रहस्य को नहीं जानता था। उसने पूछा—"हे अर्घ-कारक ! पांच सौ घोड़ों का क्या मूल्य है ?"

"देव ! एक तण्डुल-नालिका।"

"और उस तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ?"

"देव ! भीतर-बाहर सारी वाराणसी।"

उस समय सारी वाराणसी बारह योजन में फैली थी। उसके अन्दर बाहर तीन सौ योजन का देश था। उस मूर्ख ने अन्दर और बाहर, इतनी बड़ी वाराणसी का मूल्य किया एक तण्डुल-नालिका।

उसके इस निर्णय को सुनकर अमात्य तालियां पीटकर हंसने लगे—"हम आज तक यही समझते थे कि पृथ्वी और राज्य अमूल्य हैं। लेकिन आज मालूम हुआ कि इतने बड़े राज्य-सहित वाराणसी का मूल्य एक तण्डुल-नालिका मात्र है। अहो ! अर्घ-कारक की बुद्धि ! इतने समय तक यह अर्घ-कारक कहां रहे हो ? हमारे राजा के [illegible]

योग्य नहीं है।"

तब राजा ने लज्जित होकर उस मूर्ख को निकाल दिया। बोधिसत्व को ही पुनः अर्घ-कारक का पद दिया।

: २ :

स्वर्ण-मृग

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त नाम का राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व मृग की योनि में पैदा हुए।

वह माता की कोख से ही स्वर्ण-मृग निकला। उसकी आंखें मणि की गोलियों के सदृश थीं, सींग रजत-वर्ण के, मुंह लाल रंग के दुशाले की राशि के सदृश हाथ-पैर के सिरों पर जैसे लाख लगी हो और पूंछ चामरी गाय की-सी। उसका शरीर घोड़े के बच्चे जितना बड़ा था।

कुछ बड़े होने पर वह पांच सौ मृगों के साथ जंगल में रहने लगा। उसका नाम था—निग्रोध-मृगराज। वहांसे थोड़ी ही दूर पर एक दूसरा शाखा-मृग भी पांच सौ मृगों के झुण्ड के साथ रहता था। वह भी सुनहरे ही रंग का था।

उस समय बनारस का राजा मृगों का वध करने पर तुला हुआ था। बिना मांस के वह खाता ही न था। सारे निगम और जनपद के लोगों को इकट्ठा करवा, उनके अपने कामों को छुड़वा, उन्हें साथ ले वह प्रतिदिन शिकार खेलने जाता था। मनुष्यों ने काम का हर्जा होता देख सोचा—"कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे कि किसी बड़े उद्यान में बहुत से मृग इकट्ठे हो जायें। तब हम उन्हें राजा को सौंपकर अपना काम आराम से कर सकेंगे।" ऐसा निश्चय कर मनुष्य उद्यान में घास छांट कर, पानी रखकर, हरिणों के झुण्ड को ढूंढते हुए जंगल में दाखिल हुए।

२. निग्रोधमृग-जातक। १.२.१२

होने पर, हम दो जीव बारी-बारी से जायंगे। नहीं तो दो जीव एक साथ मरेंगे। आज मेरी जगह किसी और को भेज दो।"

"मैं तेरी जगह किसी और को नहीं भेज सकता। जो तुझ पर पड़ी है, उसे तू ही जान। जा।"

जब शाखा-मृग ने उस पर दया न दिखाई तो वह बोधिसत्व के पास गई। बोधिसत्व से उसने सारी बात कह सुनाई। उसने हिरणी की बात सुनकर उसे आश्वासन दिया कि वह उसकी जगह किसी और को तो नहीं कह सकता किन्तु स्वयं जा सकता है। हिरणी के चले जाने पर बोधिसत्व जाकर धर्म-गंडिका-स्थान पर सिर रखकर लेट रहा। रसोइया "अभय-प्राप्त मृगराज" को गंडिका-स्थान पर पड़ा देखकर सोचने लगा—"क्या कारण है?" उसने यह बात राजा से निवेदन की। राजा उसी समय रथ पर चढ़कर बहुत से जन-समूह के साथ वहां आया। उसने बोधिसत्व को पड़ा देखकर पूछा—"सौम्य मृगराज! क्या मैंने तुझे अभय-दान नहीं दिया है? यहां तू किस लिए पड़ा है?"

"महाराज! एक गर्भिणी हिरणी ने मुझसे आकर कहा कि मेरी बारी किसी दूसरे पर डाल दो, नहीं तो मेरे साथ एक बच्चे की भी हत्या हो जायगी। मैं एक का मरण-दुःख किसी दूसरे पर न डाल सकता था। मैंने अपना जीवन उसे देकर उसका मरना अपने ऊपर ले लिया। इसलिए मैं यहां आकर पड़ा हूं। महाराज! इसमें और कोई दूसरी शंका न करें।"

"स्वामी! स्वर्ण-वर्ण-मृगराज! मैंने तेरे सदृश क्षमा, मैत्री और दया से युक्त मनुष्यों में भी किसीको इनसे पहले नहीं देखा। मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूं। उठ, तुझे और उस हिरणी को, दोनों को अभय-दान देता हूं।"

"महाराज! हम दोनोंको अभय मिलनेपर शेष मृग क्या करेंगे?"

"मृगराज! बाकियों को भी अभय देता हूं।"

"महाराज! इस प्रकार केवल उद्यान के ही मृगों को अभय मिलेगा।

बाकी क्या करेंगे ?"

"मृगराज ! उनको भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! मृग तो अभय प्राप्त करें। बाकी चतुष्पाद क्या करेंगे ?"

"मृगराज ! उनको भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! चतुष्पाद तो अभय प्राप्त करें, बाकी पक्षी क्या करेंगे ?"

"मृगराज ! उनको भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! पक्षी तो अभय प्राप्त करेंगे, बाकी जल में रहनेवाले जन्तु क्या करेंगे ?"

"मृगराज ! उनको भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! आपने बहुत पुण्य कमाया है, अपने उदर [illegible] विजय प्राप्त की है। महाराज ! धर्माचरण कीजिये। माता-पिता, पुत्र-पुत्री, सेवक-मंत्री तथा जनपद के सभी लोगों के साथ धर्म का व्यवहार करने से आप मरने के बाद स्वर्ग-लोक को प्राप्त होंगे।"

इस प्रकार महासत्त्व बोधिसत्त्व ने राजा से सब [illegible] अभय की याचना की। वहां से उठकर, कुछ दिन उद्यान में [illegible] मृगों के झुण्ड के साथ अरण्य में चला गया।

उस गर्भिणी हिरणी ने पुष्प-सदृश पुत्र को जन्म दिया। [illegible] खेलता शाखा मृग के पास चला जाता। उसकी माता उसे [illegible] कर कहती—"पुत्र ! अबसे उसके पास न जाना। केवल निग्रोध-मृग [illegible] पास ही जाना। शाखा-मृग के आश्रय में जीने की अपेक्षा निग्रोध-मृग के आश्रय में मरना श्रेयस्कर है।"

: ४ :

भेड़ा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय

---

४. मतकभत्त जातक।१०.२.१८

उसके राज्य में एक त्रिवेदज्ञ, लोक-प्रसिद्ध ब्राह्मण-आचार्य रहता था।

एक बार श्राद्ध के दिन उसने एक भेडा मंगवाकर अपने शिष्यों से कहा—"तात! इस भेड़े को नदी पर ले जाओ। नहलाकर, गले में माला डालकर पांच अंगुलियों का चिह्न दे, सजाकर ले आओ।"

उन्होंने "अच्छा" कह स्वीकार किया। भेड़े को नदी पर ले जाकर नहलाया। अच्छी तरह सजाकर नदी के किनारे खड़ा किया। वह भेडा अपने पूर्व जन्मों को विचारकर हंसा और रोया।

उन ब्रह्मचारियों ने उससे पूछा—"मित्र भेड़! तू जोर से हंसा और रोया। किस कारण तू हँसा और किस कारण रोया?"

"तुम लोग यह बात मुझे अपने आचार्य के पास ले जाकर पूछना।"

उन्होंने यह बात अपने आचार्य से जा कही। आचार्य ने यह बात सुन कर भेड से पूछा—"हे भेड! तू किस लिए हँसा, किस लिए रोया?"

भेड ने पूर्व-जन्म-स्मरण-ज्ञान से अपने पूर्व-कर्म को याद कर ब्राह्मण से कहा—"हे ब्राह्मण! पूर्व-जन्म में मैं तेरे सदृश ही मन्त्र-पाठी ब्राह्मण था। श्राद्ध करने के लिए एक भेड मारकर मैंने मृतक भात दिया। सो, मैंने उस एक भेड़ के मारने के कारण, एक कम पांच सौ योनियों में अपना शीश कटवाया। यह मेरा पाँच सौवाँ अन्तिम जन्म है। 'आज मैं इस दुःख से मुक्त हो जाऊँगा' सोचकर हर्षित हुआ और इस कारण हँसा। और जो रोया, सो तो यह सोचकर कि मैं तो एक भेड़ के मारने के कारण पाँच सौ जन्मों में अपना शीश कटाकर आज इस दुःख से मुक्त हो जाऊँगा, लेकिन यह ब्राह्मण मुझे मारकर, मेरी तरह पाँच सौ जन्मों तक शीश कटाने के दुःख को भोगेगा; इसलिए तेरे प्रति करुणा से रोया।"

"भेड! डर मत, मैं तुझे नहीं मारूँगा।"

"ब्राह्मण! क्या कहते हो? तुम चाहे मारो चाहे न मारो, मैं आज मरण-दुःख से नहीं छूट सकता।"

"भेड! डर मत। मैं तेरी हिफाजत करता हुआ तेरे साथ ही घूमूंगा।"

"ब्राह्मण! तेरी हिफाजत अल्प-मात्र है; मेरा किया हुआ पाप बड़ा है।"

"इस भेड़े को किसीको न मारने दूंगा" सोचकर शिष्यों को साथ ले ब्राह्मण भेड़ के ही साथ घूमने लगा। भेड़े ने छूटते ही एक पत्थर की शिला के पास उगी हुई झाड़ी की ओर गर्दन उठाकर पत्ते खाने शुरू किये। उसी क्षण उस पत्थर-शिला पर बिजली पड़ी। उसमें से पत्थर की एक फांक छूटकर भेड़े की पसारी हुई गर्दन पर आ गिरी। गर्दन कट गई।

उस समय बोधिसत्व उस जगह वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए थे। वृक्ष-देवता ने दैव-शक्ति से आकाश में पालथी मारकर बैठे हुए यह सोचा—"अच्छा हो अगर प्राणी पाप-कर्म के इस प्रकार के फल को जान कर प्राण-हानि न करें। यदि प्राणी इस बात को समझ लें कि जन्म लेना दुःख है तो एक प्राणी दूसरे प्राणी की हत्या कभी न करे। प्राणघात करने वाले को चिन्तित रहना पड़ता है।"

: ५ :

कुरङ्ग-मृग[१]

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व कुरङ्ग-मृग की योनि में पैदा हुए थे। वह जंगल में फल खाकर रहते थे।

उस समय वह एक वृक्ष विशेष के फल खाया करते थे। वहां पर के शिकार खेलनेवाला एक ग्रामीण शिकारी फलदार वृक्षों के नीचे मृगों के पद-चिह्न देख उन पर अटारी बांधकर बैठता था। जो मृग फल खाने आते, उन्हें अटारी पर से ही भाले से बींधकर उनका मांस बेच कर गुजारा करता था।

एक दिन उसने उस वृक्ष के नीचे बोधिसत्व के पद-चिह्न को देख,

१. कुरुङ्ग मिग जातक। १. २. २१

जिसके नीचे बोधिसत्व फल खाने आते थे। प्रातःकाल ही खाना खा, हाथ में शक्ति ले, वन में प्रवेश कर उस वृक्ष की अटारी पर जा बैठा। बोधिसत्व भ प्रात.काल ही फलों को खाने की इच्छा से अपने निवास-स्थान से निकलकर उस वृक्ष की ओर चले। लेकिन बोधिसत्व एकदम वृक्ष के नीचे न जाकरयह सोचते हुए खडे रहे कि कभी-कभी शिकार खेलनेवाले शिकारी वृक्षों पर अटारी बांधते हैं, कहीं इसी तरह की कुछ गडबड न हो।

शिकारी ने मृग को जल्दी न आता देख अटारी पर बैठे-ही-बैठे फलों को बोधिसत्व के आगे बढ़ाकर फेका। बोधिसत्व ने सोचा-"यह फल इतनी दूर आ-आकर मेरे सामने गिरते है। शायद ऊपर शिकारी है।" अधिक सोच विचार न कर उसने कहा—"हे वृक्ष! पहले तू फलों को सीधे ही गिराता था, लेकिन आज तूने अपना वृक्ष-स्वभाव छोड दिया। मेरे आगे विशेष रूपसे फल फेंक रहा है। सो, जब तूने वृक्ष-स्वभाव छोड़ दिया तो मैं भी तुझे छोड़ कर दूसरे वृक्ष के नीचे जाकर अपना आहार खोजूंगा।"

: ६ :

९. बैल और सूअर

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। बोधिसत्व एक गांव में एक कुटुम्बी के घर गो-योनि में पैदा हुए—नाम था महालोहित। उनका एक छोटा भाई भी था। उसका नाम था चुल्ललोहित। इन दोनों भाइयों के कारण ही उस परिवार का काम उन्नति पर था।

उसी कुल में एक कुमारी भी थी। एक नगर-वासी ने उस कुमारी को अपने पुत्र के लिए वरा। कुमारी के माता-पिता एक सूअर को यवागु-भात खिला-पिलाकर पालने लगे, यही सोचकर कि कुमारी के विवाह के अवसर पर आनेवाले आगन्तुकों के लिए यह सालन की सामग्री होगा।

६. मुनिक जातक। ६. ३. ३०

चुल्ललोहित को सूअर की यह खातिर अच्छी न लगी। उसने अपने भाई से पूछा—"इस परिवार के काम-काज को उन्नत बनानेवाले हम हैं। हम दोनों भाइयों के कारण ही यह समृद्धि घर है। लेकिन इन घरवाले हमें तो केवल तृण-पुआल ही देते हैं। सूअर को यवागू-भात खिलाकर पालते हैं। इसको यह सब किस कारण से मिलता है?"

उसके भाई ने उत्तर दिया—"तात चुल्ललोहित! तू इसके भोजन की ईर्ष्या मत कर। तू उत्सुकता-रहित होकर भूसे को खा। यह सूअर अपना मरण-भोजन खा रहा है। इस कुमारी के विवाह के अवसर पर आनेवाले आगन्तुकों के लिए सालन की सामग्री होगा। इसीलिए घरवाले इसे पोस रहे हैं। कुछ ही दिन बाद वे लोग आ जायेंगे। तब तू देखेगा कि वे लोग इस सूअर को पैरों से पकड़कर घसीटते हुए इसके निवासस्थान से बाहर निकाल लेंगे। इसको मारकर आगन्तुकों के लिए सूप-व्यञ्जन बनायेंगे।"

थोड़े दिनों के बाद ही वे मनुष्य आ गए। सूअर को मारकर नाना प्रकार के सूप-व्यञ्जन बनाये। बोधिसत्व ने चुल्ललोहित से पूछा—"तात तूने सूअर को देखा?"

"भाई! देख लिया उसको मिलनेवाले भोजन का फल। उससे तो लाख दर्जे अच्छा हमारा तृणवाला भूसा ही है। यह दीर्घायु का लक्षण है।"

: ७ :

बटेर

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व बटेर की योनि में पैदा हुए थे। बड़े होने पर वे हजारों बटेरों के साथ जंगल में रहने लगे।

उस समय बटेरों का एक शिकारी बटेरों के रहने के स्थान में [illegible]

---

७. सम्मोदमान जातक। १. ४. ३३

दूर पर जाकर बटेरों की-सी आवाज लगाता। जब बटेर वहां इकट्ठे हो जाते तो उन पर जाल फेंक देता। जब वे जाल में फंस जाते तो जाल को किनारों से दबाता हुआ सबको एक जगह करके पेटी में भर लेता। उन्हें बेचकर उस आमदनी से अपनी जीविका चलाता।

एक दिन बोधिसत्व ने उन बटेरों को बुलाकर कहा—"यह चिड़ीमार हमारी जाति-बिरादरी का नाश कर रहा है। क्या करना चाहिए?" बटेरों ने कहा—"आप ही बताइये, क्या करना चाहिए?"

"मैं एक उपाय जानता हूं, जिससे यह हमें न पकड़ सकेगा। अब से जैसे ही यह तुम्हारे ऊपर जाल फेंके, वैसे ही जाल की एक-एक गांठ में सिर रखकर जाल-सहित उड़ जाओ। उसे यथेष्ट स्थान पर ले जाकर किसी कांटेदार झाड़ी के ऊपर डाल दो। नीचे से जहां-तहां से भाग जाओ।"

सबने "अच्छा" कह स्वीकार किया। दूसरे दिन जब चिड़ीमार ने उनके ऊपर जाल फेंका तो वे जाल उड़ा कर ले गए और एक कांटेदार झाड़ी पर डाल दिया। अपने नीचे से जहां-तहां से निकल भागे।

झाड़ी में से जाल निकालते-निकालते ही चिड़ीमार विकल हो गया। वह खाली हाथ ही घर लौटा। उसके बाद से बटेर रोज वैसा ही करते। वह चिड़ीमार सूर्यास्त तक जाल छुड़ाता ही रह जाता। बिना कुछ पाये हुए खाली हाथ घर लौट आता।

उसकी भार्या ने छूछे हाथ लौटते देखकर कहा—"तुम रोज खाली हाथ घर लौटते हो। मालूम होता है, बाहर किसी और की भी परवरिश हो रही है?"

"नहीं भद्रे! मैं किसी और को नहीं पालता-पोसता हूँ। बात असल में यह है कि ये बटेर आज-कल एकमत होकर चुगते हैं। मेरे डाले जाल को कांटों की झाड़ी पर फेंककर चले जाते हैं। लेकिन तू चिन्ता मत कर। वे सदैव एक-मत नहीं रहेंगे। जिस समय वे विवाद में पड़ेंगे, उस समय उन सबको लेकर तुझे हँसाता हुआ घर लौटूंगा।"

... ...

कुछ दिनों बाद। बटेरों का झुण्ड एक गोचर-भूमि पर उतरा हुआ था। चारा चुगते हुए वे आपस में खेलते-कूदते भी थे। इस प्रकार गोचर-भूमि पर उतरता हुआ एक बटेर गलती से दूसरे के सिर पर से लाँघ गया। दूसरे ने क्रुद्ध होकर कहा—"कौन लाँघा मेरे सिर पर से?"

"भाई! मैं गलती से लाँघ गया। क्रुद्ध मत हो।"

उस बटेर के माफी माँगने पर भी वह क्रोध करता ही गया। आपस में दल-बन्दी हो गई। बार-बार बोलते हुए वे एक-दूसरे को ताना देने लगे—"मालूम होता है जैसे तू ही जाल को उठाता है!"

उन्हें इस प्रकार विवाद करते देखकर बोधिसत्त्व ने सोचा—"विवाद करनेवालों का कुशल नहीं है। अब ये जाल नहीं उठायेंगे और शीघ्र विनाश को प्राप्त होंगे। चिड़ीमार को अवसर मिल जायगा।"

जब लाख समझाने पर भी वे नहीं माने तब बोधिसत्त्व अपनी जमात को साथ लेकर कहीं और चला गया।

फिर आकर चिड़ीमार ने बटेरों की बोली बोली। जब वे इकट्ठे हो गए, तब उन पर जाल फेंका। तब एक बटेर ने दूसरे को कहा—"जाल ही उठाते-उठाते तेरे सिर के बाल गिर गए। ले अब तो उठा।" दूसरे ने कहा—"जाल ही उठाते-उठाते तेरे दोनों पंखों की पसलियाँ गिर पड़ीं। ले अब तो उठा।"

इस प्रकार जब वे 'तू उठा—तू उठा' करते विवाद कर रहे थे, तत्क्षण चिड़ीमार ने ही जाल को उठा लिया। उन सबको इकट्ठा कर, पेटी भर, भार्या को प्रसन्न करता हुआ वह घर लौटा।

: ८ :

तित्तिर

पूर्व समय में हिमालय के पास बरगद का एक बड़ा पेड़ था। उस पेड़ का

८. तित्तिर जातक। १.४.३७

आश्रय लेकर तीन मित्र रहा करते थे—तित्तिर, वानर और हाथी।

लेकिन वे तीनों न एक साथ मिलकर रहते थे, न एक दूसरे का आदर करते थे, न सत्कार करते थे, न एक साथ जीविका करते थे। तब उनके मन में यह विचार हुआ—"हमारे लिए इस प्रकार रहना उचित नहीं है। हमें आपस में मिलना-जुलना चाहिए। जो हम लोगों में बड़ा है, उसका प्रणाम आदि सत्कार करना चाहिए।"

उस दिन से तीनों आपस में मिलने लगे। फिर उनके बीच प्रश्न उठा कि कौन सबसे जेठा है? इस बात का फैसला करने के लिए तीनों मित्र बड़ के नीचे बैठे। वहां बैठने पर तित्तिर और वानर ने हाथी से पूछा—"सौम्य हाथी! तू इस वृक्ष को किस समय से जानता है?"

"मित्रो! जब मैं बच्चा था तो इस बर्गद के वृक्ष को जांघ के बीच करके लांघ जाता था। जब जांघ के बीच करके खड़ा होता था तो इसकी फुनगी मेरे पेट को छूती थी। सो मैं इसे इसके गाछ होने के समय से जानता हूं।"

हाथी के जवाब दे चुकने पर तित्तिर और हाथी ने बन्दर से वही प्रश्न किया। बन्दर बोला—"मित्रो! जब मैं बच्चा था तो भूमि पर बैठकर, बिना गर्दन उठाए, इस बर्गद की फुनगी के अंकुरों को खाता था। सो मैं इसे छोटा होने के समय से जानता हूँ।"

वही प्रश्न तित्तिर के सामने भी दुहराया गया। वह बोला—"मित्रो! अमुक स्थान पर एक बर्गद का बड़ा पेड़ था। मैंने उसके फल को खाकर इस स्थान पर बीट कर दी। उसीसे यह वृक्ष पैदा हुआ। इस प्रकार इसे मैं उस समय से जानता हूँ, जब यह पैदा ही नहीं हुआ था।"

ऐसा कहने पर बन्दर और हाथी ने तित्तिर पण्डित को कहा—"मित्र! तू हममें जेठा है। इसलिए अब से हम तेरा सत्कार करेंगे, अभिवादन करेंगे तथा तेरे उपदेशानुसार चलेंगे। अब से तुम हमें उपदेश देना और अनुशासन करना।" उस समय से तित्तिर उन्हें उपदेश देने लगा तथा अनुशासन करने लगा।

मेरी, तालाब के होने की बात पर विश्वास नहीं है तो पहले मेरे साथ एक मछली को तालाब देखने के लिए भेजो।"

मछलियों ने उसकी बात पर विश्वास कर लिया। एक कानी मछली को यह सोचकर उसके साथ भेजा कि यह जल-स्थल दोनों जगहों पर समर्थ है। उसने उसे ले जाकर तालाब में छोड़ दिया। सारा तालाब दिखा कर फिर उन मछलियों के पास वापस लाया। उसने उन मछलियों से तालाब के सौन्दर्य की प्रशंसा की। उसकी बात सुनकर सभी जाने को इच्छुक हो गईं। उन्होंने बगुले से कहा—"आर्य! हमें लेकर चलो।"

बगुला पहले उस काने महामत्स्य को ही तालाब के किनारे ले गया। तालाब दिखाकर, तालाब के किनारेवाले वरुण-वृक्ष पर जा बैठा। उसको शाखाओं के बीच में डालकर चोंच से कोंच-कोंचकर मारा। मांस खाकर मत्स्य के काँटों को वृक्ष की जड में डाल दिया। फिर जाकर उन मछलियों से कहा—"उस मछली को मैं छोड़ आया, अब दूसरी आये।" इस उपाय से बगुला एक-एक करके उन सब मछलियों को खा गया।

इस प्रकार जब तालाब की सब मछलियाँ खतम हो गईं तब एक केकड़े की बारी आई। बगुले ने उसे खाने की इच्छा से कहा—"भो कर्कट! मैं सब मछलियों को ले जाकर महातालाब में छोड आया। आ, तुझे भी ले चलूँ।"

"ले तो चलोगे, मगर मुझे पकडोगे कैसे?"

"चोंच में पकड़कर ले जाऊँगा।"

"तुम इस प्रकार ले जाते हुए मुझे गिरा दोगे। मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा।"

"डर मत! मैं तुझे अच्छी तरह पकड़कर ले जाऊँगा।"

केकडे ने सोचा—"इसने मछलियों को तो तालाब में ले जाकर नहीं ही छोड़ा है। अगर मुझे ले जाकर तालाब में छोड देगा तो इसमें इसकी कुशल है, नहीं तो इसकी गर्दन छेदकर प्राण हर लूंगा।"

इसलिए उसने कहा—"मित्र बगुले! तू ठीक से न पकड़ सकेगा।

लेकिन हमारा जो पकड़ना है, वह पक्का होता है। यदि मुझे अपने डंक से अपनी गर्दन पकड़ने दे तो मैं चलूंगा।" बगुले ने केकड़े की मन की इच्छा को न जानते हुए कहा—"अच्छा।"

केकड़े ने अपने डंक से लोहार की संडासी की तरह उसकी गर्दन को अच्छी तरह पकड़कर कहा—"अब चल।" बगुला उसे तालाब दिखाकर वरुण-वृक्ष की ओर उड़ा।

केकड़े ने कहा—"मामा! तालाब तो यहां है, लेकिन तू यहां से कहां जा रहा है?"

बगुले ने कहा—"मालूम होता है, तू समझता है कि मैं 'प्यारा मामा' और तू मेरी बहन का प्रिय पुत्र है, इसीलिए मैं तुझे उठाये फिरता हूं। मैं तेरा दास हूं? देख, इस वरुण-वृक्ष के नीचे पड़े मछलियों के कांटों के ढेर को। जैसे मैं इन मछलियों को खा गया, वैसे ही तुझे भी खाऊंगा।"

केकड़े ने गर्जकर उत्तर दिया—"वह मछलियां अपनी मूर्खता से तेरा आहार हुईं। मैं तुझे अपने को खाने न दूंगा। किन्तु, तेरा ही विनाश करूंगा। तू नहीं जानता कि तू अपनी मूर्खता से ठगा गया है। मरना होगा तो दोनों मरेंगे। देख, मैं तेरे सिर को काटकर भूमि पर फेंक देता हूं।"

इतना कहकर केकड़े ने संडासी की तरह अपने डंक से उसकी गर्दन भींची। बगुले ने मुँह फैला दिया। आँखों से आंसू गिरने लगे। मरने के भय से उसने कहा—"स्वामी! मुझे जीवन दो, मैं तुम्हें नहीं खाऊंगा।"

"यदि ऐसा है तो उतर कर मुझे तालाब में छोड़ो।"

वह रुक गया। तालाब पर उतरकर उसने पैरों को तालाब के किनारे कीचड़ पर रखा। कैंची से कुमुद की डंठल काटने की तरह केकड़ा उसकी गर्दन काटकर पानी में घुस गया।

: १० :

कबूतर

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था । उस समय बोधिसत्व कबूतर की योनि में पैदा हुए ।

उस समय वाराणसी-निवासी पुण्य की इच्छा से जगह-जगह पक्षियों के लिए सुख से रहने को छींके लटकाते थे । वाराणसी के सेठ के रसोइये ने भी अपने रसोईघर में छींका लटका रक्खा था । बोधिसत्व वहीं रहता था । वह प्रातःकाल ही निकलकर चुगने की जगहों पर दाना चुगकर शाम पड़े लौट आता था ।

एक दिन एक कौवा उसी रास्ते बड़े जोर से उड़ा जा रहा था । उसको नीचे से खट्टे-मीठे, मत्स्य-मांस की गन्ध आई । उसके मन में लोभ उत्पन्न हो गया—मुझे यह मत्स्य-मांस कैसे मिलेगा ? कुछ दूरी पर बैठकर वह विचारने लगा । शाम को उसने देखा कि एक कबूतर रसोईघर में घुस रहा है । उसने सोचा—इस कबूतर के जरिये मुझे मत्स्य-मांस मिल सकता है ।

इसलिए अगले दिन प्रातःकाल ही जब कबूतर चुगने के लिए जा रहा था, कौवा उसके पीछे-पीछे हो लिया । कबूतर ने उसे अपने पीछे-पीछे आता देखकर पूछा—"सौम्य ! तू किस लिए मेरे साथ-साथ फिरता है ?"

"स्वामी ! मुझे आपकी जीवन-चर्या अच्छी लगती है । अब से मैं आपकी सेवा में रहूंगा ।"

"सौम्य ! तुम्हारा चुगना दूसरा होता है, हमारा दूसरा । तुम्हारा मेरी सेवा में रहना कठिन है ।"

"स्वामी ! तुम्हारे चोगा लेने के समय में भी चोगा लेकर तुम्हारे साथ ही वापस लौटूंगा ।"

"अच्छा, तो प्रमाद-रहित होकर रहना ।"

---

१०. कपोत जातक । १. ४. ४२

"अब यह मेरे लिए मन भरकर मांस खाने का समय है। पहले, बड़ा-बड़ा मांस खाऊं या चूर्ण? मांस का चूरा खाने से पेट जल्दी नहीं भरेगा, इसलिए एक बड़े-से मांस के टुकड़े को छींके पर ले जाकर, वहां रखकर पड़ा-पड़ा खाऊंगा।"

यह सोचकर कौवा छींके से उड़कर कड़छी पर जा लगा। कड़छी ने 'किर्लो-किर्लो' शब्द किया। रसोइया उस शब्द को सुनकर दौड़ा। यह क्या है? घुसते ही उसने कौवे को देखा। 'यह दुष्ट कौवा सेठ के लिए बनाया मांस खाना चाहता है। मैं सेठ की नौकरी करके जीता हूँ या इस मूर्ख की?' ऐसा कह उसने दरवाजा बन्द कर कौवे को पकड़ा और उसके सारे शरीर पर से पर नोच, कच्चा अदरक, नमक तथा जीरा कूटकर, उसमें खट्टा-मीठा मिला कर उसके सारे बदन पर चुपड़ दिया। फिर उस छींके में उसी प्रकार फेंक दिया।

वह अत्यन्त पीड़ा अनुभव करता हुआ छटपटाता पड़ा रहा। कबूतर ने शाम को आकर उस लोभी कौवे को पीड़ा-ग्रस्त देखा। उसने कहा—"लोभी कौवे! तू मेरी बात न मानकर इस दुःख में पड़ा।"

कबूतर ने निश्चय किया कि 'अब मैं इस जगह नहीं रहूंगा।' वहां से वह अन्यत्र चला गया।

कौवा वहीं मर गया। रसोइये ने उसे छींके-सहित उठाकर कूड़े पर फेंक दिया।

: ११ :

वैदर्भ-मन्त्र

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय एक गांव में एक ब्राह्मण वैदर्भ-मन्त्र जानता था।[1] वह मन्त्र बहुमूल्य था।

---

11. वेदब्भ जातक। 1.2.48

नक्षत्रों के ठीक होने पर उस मन्त्र का जाप कर आकाश की ओर देखने से सात रत्नों की वर्षा होती थी। बोधिसत्व उस समय उस ब्राह्मण के पास विद्या सीखते थे।

एक दिन वह ब्राह्मण बोधिसत्व को साथ लेकर गांव से निकलकर चेतिय-राष्ट्र की ओर गया। रास्ते में एक जंगल पड़ा। उस समय पांच सौ चोर जंगल में मुसाफिरों पर डाका डालते थे। उन्होंने बोधिसत्व और वेदर्भ ब्राह्मण को पकड़ लिया।

ये चोर 'पेसनक चोर' कहाते थे, क्योंकि जब वे दो जनों को पकड़ते तो एक को घर भेजकर उसके घर से धन मंगवाते थे। 'प्रेषण' शब्द से ही वे प्रेषणक हुए। पिता-पुत्र को पकड़ते तो पिता को भेजते, मां-बेटी को पकड़ते तो मां को भेजते, गुरु-शिष्य को पकड़ते तो शिष्य को भेजते। सो उन्होंने बोधिसत्व को भेजा।

बोधिसत्व ने आचार्य को प्रणाम करके कहा—"मैं एक-दो दिन में आ जाऊंगा। आप डरियेगा नहीं। आज धन-वर्षा का नक्षत्र-योग है। आप दुःख न सह सकने के कारण मन्त्र-जाप हरगिज न करें। यदि मन्त्र का जाप करके धन बरसायेंगे तो आप और पांच सौ चोर—सभी विनाश को प्राप्त होंगे। मेरा कहना मानकर पड़े रहिये।"

इस प्रकार आचार्य को समझाकर वे धन लाने चले गये। सूर्यास्त होने पर चोरों ने ब्राह्मण को रस्सी से बांधकर जमीन पर डाल दिया। उसको असह्य वेदना होने लगी।

उसी समय पूर्व दिशा की ओर परिपूर्ण चन्द्र-मण्डल उगा। ब्राह्मण ने तारों की ओर देखकर धन बरसाने के नक्षत्र-योग को जान लिया। मन में विचार करने लगा—"मैं क्यों दुःख सहूं? क्यों न मन्त्र-जाप कर और रत्नों की वर्षा कर चोरों को धन देकर सुख-पूर्वक चला जाऊं?"

उसने चोरों से बातचीत की—"चोरो! तुमने मुझे किस लिए पकड़ रखा है?"

"धन के लिए।"

"यदि धन की आवश्यकता है तो शीघ्र ही मुझे बन्धन से मुक्त करो। नहलाकर, नवीन वस्त्र पहनाकर, सुगन्धियों का लेपकर, फूल-मालाएं पहनाकर बैठाओ। मैं आकाश से रत्नों की वर्षा कराऊंगा।"

चोरों ने उसकी बात सुनकर वैसा ही किया। ब्राह्मण ने नक्षत्र-योग जानकर आकाश की ओर देखा। उसी समय आकाश से रत्न गिरे। धन को इकट्ठा करके अपने उत्तरीय में गठरी बांधकर चोर जाने लगे। ब्राह्मण भी उसी रास्ते उनके पीछे-पीछे चला।

कुछ दूर जाने पर उन चोरों को दूसरे पांच सौ चोरों ने पकड़ा। चोरों ने पूछा—"हमें किस लिए पकड़ते हो?"

"धन के लिए।"

"यदि धन की आवश्यकता है तो इस ब्राह्मण को पकड़ो। यह आकाश की ओर देखकर धन बरसावेगा। हमें भी यह धन इसीने दिया है।"

चोरों ने उन चोरों को छोड़कर ब्राह्मण को पकड़ा—"हमें भी धन दो।" ब्राह्मण ने कहा—"धन तो मैं तुम्हें दूं, लेकिन धन बरसाने का नक्षत्र-योग अब एक वर्ष बाद होगा। यदि तुम्हें धन से मतलब है तो साल भर सबर करो।" चोरों ने सोचा—"यह दुष्ट औरों के लिए अभी धन बरसाकर हमें साल भर प्रतीक्षा कराता है।" उन्होंने क्रुद्ध होकर तलवार से ब्राह्मण के दो टुकड़े कर उसे वहीं रास्ते पर डाल दिया।

फिर जल्दी से उन चोरों का पीछा करके उनके साथ युद्ध किया। उन सबको मारकर उनका धन छीन लिया। आपस में बटवारा करने के लिए फिर परस्पर युद्ध किया। जबतक केवल दो जने रह गये तबतक एक-दूसरे को मारते रहे। उन एक सहस्र आदमियों के विनष्ट होने पर दो आदमियों ने धन को लाकर एक गांव के पास गाड़ा। उनमें से एक आदमी खड्ग लेकर धन की रक्षा करने लगा। दूसरा गांव में भात पकवाने गया। खड्गवाले आदमी ने सोचा—"क्यों न उसे मारकर सारा धन आप ही ले लूं?" वह हाथ में खड्ग लेकर तैयार बैठ गया।

दूसरे ने सोचा—"इस धन के दो हिस्से करने होंगे। क्यों न भात में

विष मिलाकर इसे मार डालूं? इस प्रकार सारा धन मेरा ही हो जायगा।"
ऐसा सोचकर, उसने पहले स्वयं भात खा लिया और [illegible] के भात में
विष मिलाकर ले चला।

दोनों एक-दूसरे के मन के विचार को नहीं जानते थे। इसलिए दूसरा
आदमी पहले के पास भात लेकर निधड़क पहुंचा। भात रखते ही पहले ने
दूसरे के खड्ग से दो टुकड़े कर दिये और स्वयं भात खाकर मर गया।

: १२ :

सत्याग्रह

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा राज्य करता था। उस समय
बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से उत्पन्न हुए। नामकरण के दिन
कुमार का नाम शीलव रक्खा गया। सोलह वर्ष की आयु होते ही वह
सब शिल्पों में पारंगत हो गया।

पिता के मरने पर वह राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ। [illegible] दान देता
था। उपोसथ-व्रत रखता था। शान्ति, मैत्री [illegible] से युक्त होकर प्रजा
को इस प्रकार सन्तुष्ट रखता था जैसे कोई गोद में बैठे पुत्र को।

एक बार उसके अन्तःपुर में एक अमात्य ने दुराचार किया। राजा ने
उसे बुलाकर कहा—"हे मूर्ख! तूने अनुचित किया है। अब तू मेरे राज्य
में रहने के योग्य नहीं। अपने धन और स्त्री-पुत्रों को लेकर अन्यत्र
चला जा।" राजा ने उसे देश-निकाला दे दिया।

वह अमात्य काशी-राष्ट्र [illegible] पार कर कोशल-नरेश की सेवा में
उपस्थित हुआ। [illegible]
[illegible] विश्वासपात्र हो गया। एक दिन उसने [illegible] से —

१२. [illegible] जातक। १.६.५१

"देव ! वाराणसी का राज्य मक्खी-रहित शहद के छत्ते-जैसा है। राजा अत्यन्त कोमल स्वभाव का है। थोड़ी-सी सेना से वाराणसी राज्य जीता जा सकता है।"

राजा ने उसकी बात सुनकर सोचा—"वाराणसी राज्य महान् है। यह कहता है कि थोड़ी-सी सेना से जीता जा सकता है। कहीं यह चर-पुरुष तो नहीं है ?" तब उसने अमात्य को बुलाकर कहा—"मालूम होता है, तू चर-पुरुष है।"

"देव ! मैं चर-पुरुष नहीं हूं। यदि मेरा विश्वास न हो तो मनुष्यों को भेजकर काशी-नरेश के राज्य की सीमा पर के ग्रामों का नाश करायें। गांववाले जब उन आदमियों को पकड़कर राजा के पास ले जायंगे तो राजा उन्हें धन देकर छोड़ देगा।"

उसकी बात मानकर राजा ने अपने आदमी भेजकर काशी-नरेश के प्रत्यन्त गांवों का नाश कराया। लोग उन चोरों को पकड़कर वाराणसी-राजा के दरबार में ले गये। राजा ने उनसे पूछा—"तात ! किस लिए गांव का नाश करते हो ?"

"देव ! जीविका का कोई उपाय न होने से।"

"तो तुम मेरे पास क्यों नहीं आये ? अब आगे से ऐसा मत करना।"

ऐसा कहकर राजा ने उन्हें धन देकर विदा किया। उन्होंने जाकर कोशल-नरेश से यह समाचार कहा। इतने पर भी कोशल-नरेश को काशी पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं हुई। उसने फिर मध्य-जनपद का नाश करवाया। फिर शहर लुटवाया। काशी-नरेश ने सबको धन देकर उसी प्रकार छोड़ दिया।

तब यह जानकर कि वाराणसी का राज्य अत्यन्त धार्मिक है, कोशल-नरेश काशी-राज्य लेने के लिए सेना लेकर निकला।

उस समय वाराणसी-नरेश शीलव महाराज के पास एक हजार ऐसे अभेद्य—शूरतर—महायोधा थे, जो सामने से मस्त हाथी के आने पर भी पीछे न लौटनेवाले थे, सिर पर बिजली गिरने पर भी न डरनेवाले थे,

उस समय भी शीलव महाराज ने चोर-राजा के प्रति अपने मन में द्वेष-भाव तक नहीं आने दिया। राजा के साथ बंधे जाते हुए अमात्यों में राजा की बात के विरुद्ध जानेवाला एक भी न था। इतनी विनीत थी वह राजा की परिषद् !

सो वे राज-पुरुष अमात्यों-सहित शीलव राजा को कच्चे स्मशान में ले गये। गले तक गड्ढे खोदकर शीलव महाराज को बीच में और उसके दोनों ओर शेष अमात्यों को गाड़ा। वन से चारों तरफ से बालू कूट-कूटकर चले गये। शीलव महाराज ने अमात्यों को सम्बोधित कर उपदेश दिया—"तात ! चोर-राजा के प्रति क्रोध न कर मैत्री-भावना ही करो।"

आधी रात को मनुष्य का मांस खाने के लिए शृगाल आये। उन्हें देख-कर राजा और अमात्य सबने एक साथ शोर मचाया। शृगाल डर के मारे भाग गये। लेकिन गीदड़ों ने रुक कर देखा कि कोई उनका पीछा नहीं कर रहा है। वे फिर लौट आये। उन्होंने फिर वैसा ही शोर मचाया। इस प्रकार तीन बार भागकर भी जब उन्होंने किसीको पीछा करते न देखा तो वीर बनकर लौटे। सोचा, ये लोग दण्डित होंगे। इस बार वे उनके बहुत शोर मचाने पर भी नहीं भागे।

सियारों का सरदार राजा के पास पहुंचा और बाकी दूसरों के पास। होशियार राजा ने उसे अपने समीप आने दिया।

उसने गर्दन को इस प्रकार ऊपर उठाया जैसे वह गीदड़ को काटने का मौका दे रहा हो। जब सियार गर्दन काटने आया तो उसको ठोड़ी की हड्डी से खींचकर यन्त्र की तरह जोर से पकड़ लिया। हाथी के बल के समान बलशाली राजा ने जब अपनी ठोड़ी से उसको पकड़ा तो सियार छुड़ा न सका। मरने से भयभीत होकर जोर से चिल्ला उठा। उसकी चिल्लाहट सुनकर बाकी सियार भाग खड़े हुए। सियार-सरदार के इधर-उधर झटके मारने से रेत ढीली हो गई। राजा ने रेत को ढीला हुआ जान-कर शृगाल को छोड़ दिया। इधर-उधर हिलाकर दोनों हाथों को बाहर

निकाला। फिर हाथों से गढ़े की मुँडेर पर ज़ोर देकर वायु से छिन्न हुए बादल में से चन्द्रमा की तरह वह बाहर निकल आया। रेत हटाकर उसने सब अमात्यों को निकाला। सब अमात्यों-सहित वह कच्चे श्मशान में खड़ा हुआ।

उस समय कुछ मनुष्य एक मृतक मनुष्य को लाकर दो यक्षों की सीमा के बीच छोड़ गये। वे यक्ष उस मृतक मनुष्य को आपस में बाँट न सके। उन्होंने सोचा—"इसे हम नहीं बाँट सकते। यह सौम्य-राजा धार्मिक है। इसके पास चलें। यह हमें ठीक-ठीक बाँट कर देगा।" वे इस मृतक मनुष्य को पाँव से पकड़कर घसीटते-घसीटते राजा के पास ले जाकर बोले—"देव! इसे हमें बाँटकर दें।"

"यक्षो! मैं इसे बाँटकर तुम्हें दे तो दूँ, लेकिन मैं अपरिशुद्ध हूँ। पहले नहाऊंगा।"

यक्षों ने अपने बल से चोर-राजा के लिए रखा हुआ सुगन्धित जल लाकर राजा को नहाने के लिए दिया। नहा लेने पर चोर-राजा के वस्त्र लाकर दिये। वस्त्र पहन लेने पर चार प्रकार की सुगन्धि की पेटिका लाकर दी। सुगन्धि का लेप कर लेने पर सोने की पेटिका में, मणि-निर्मित पंखों में रखे हुए नाना प्रकार के फूल लाकर दिये। उन्होंने पूछा—"महाराज! अब क्या करें?" राजा ने कहा—"भूख लगी है।" उन्होंने जाकर चोर-राजा के लिए सम्पादित नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन लाकर दिये। नहाकर सुगन्धि से अनुलिप्त, अलंकृत, प्रसन्नचित्त राजा ने नाना प्रकार के भोजन खाये। यक्ष, चोर-राजा के लिए रखा हुआ सुगन्धित जल, सोने की झारी और सोने के कटोरे ले आये। फिर राजा के पानी पीकर, हाथ-मुंह धो लेने पर उन्होंने चोर-राजा के लिए तैयार किया गया पाँच प्रकार की सुगन्धियों से सुगन्धित पान लाकर दिया। उसके खा चुकने पर पूछा—"अब क्या करें?" "जाकर, चोर-राजा के सिरहाने रखी तलवार ले आओ।" वह भी जाकर ले आये। राजा ने तलवार लेकर, उस मृत मनुष्य को सीधा करवा, तलवार, माथे के बीच से [illegible] किया।

दो टुकड़े करके दोनों यक्षों को बराबर-बराबर बाँट दिया। राजा तलवार धोकर खड़ा हुआ। उन यक्षों ने मनुष्य-मांस खाकर प्रसन्न हो राजा से पूछा—"महाराज! हम आपके लिए क्या करें?"

"तुम अपने प्रताप से मुझे तो चोर-राजा के शयनागार में उतार दो और इन अमात्यों को इनके घर पहुँचा दो।" उन्होंने "अच्छा देव" कह कर वैसा ही किया।

उस समय चोर-राजा अपने शयनागार में शय्या पर पड़ा सो रहा था। राजा ने उस सोते हुए प्रमादी के पेट में तलवार की नोक चुभोई। वह डर के मारे अपनी शैया से हड़बड़ाकर उठा। दीपक के प्रकाश में सीलव-महाराज को पहचानकर होश संभालकर राजा ने पूछा—"महाराज! पहरे से युक्त, बन्द दरवाजेवाले भवन में, रात्रि के समय, पहरेदारों की आज्ञा के बिना, इस प्रकार तलवार बांधे, तुम इस शयनागार में कैसे आये?" राजा ने अपने आने का वृत्तान्त विस्तार से कहा। तब चोर-राजा ने पुलकित-चित्त होकर कहा—"महाराज! मैं मनुष्य होकर भी आपके गुणों को नहीं जानता और यह दूसरों का मांस खानेवाले, अति कठोर यक्ष आपके गुण जानते हैं। हे नरेन्द्र! मैं अब से आप-ऐसे शीलवान के प्रति द्वेष न रखूंगा।" ऐसा कहकर उसने तलवार लेकर शपथ ली। राजा से क्षमा मांगकर उसे शय्या पर सुलाया। आप छोटी चारपाई पर लेटा।

सवेरा होते ही चोर-राजा ने शहर में मुनादी फिरवाकर सब सैनिकों तथा अमात्य, ब्राह्मण, गृहपतियों को एकत्रित करवाया। उनके सम्मुख आकाश के पूर्ण चन्द्र को उठाकर दिखाने की तरह सीलव-राजा के गुणों को कहा। फिर सभा के बीच राजा से क्षमा मांगी। राज्य उसे ही सौंप कर कहा—"अब से आपके राज्य में चोरों की गड़बड़ी की देख-भाल करने का भार मुझ पर रहा। मैं पहरेदारी करूंगा। आप राज्य करें।"

चोर-राजा उस चुगलखोर अमात्य को दण्ड देकर, अपनी सेना-सवारी-सहित अपने देश चला गया।

दिन ग्रामवासी आकर मृत-मनुष्यों के पांव पकड़कर उन्हें छिपे स्थान में फेंक देते और गाड़ियों-सहित जो कुछ उनके साथ होता, ले जाते।

उस दिन भी अरुणोदय के समय ग्राम से निकलकर, 'बैल मेरे होंगे, गाड़ी मेरी होगी, सामान मेरा होगा' कहते हुए ग्रामवासी विष-वृक्ष के नीचे पहुंचे। मनुष्यों को निरोगी देखकर उन्होंने पूछा—"तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि यह वृक्ष आम्र के वृक्ष नहीं है?" उन्होंने कहा—"हम नहीं जानते; हमारा ज्येष्ठ सार्थवाह जानता है।" मनुष्यों ने बोधिसत्व से पूछा—"हे पण्डित! तूने कैसे जाना कि यह वृक्ष आम का वृक्ष नहीं है?"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"न तो यह वृक्ष चढ़ने में दुष्कर है, न ही गांव से दूर है। फिर भी इसके फलों को किसीने नहीं खाया है। इन दो बातों से जानता हूं कि यह स्वादु-फलों का वृक्ष नहीं है।"

: १४ :

पंचायुध

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए।

कुमार के नाम-करण के दिन एक सौ आठ ब्राह्मणों की सब कामनाएं पूरी कर उनसे कुमार के लक्षणों के बारे में पूछा गया। चिह्न देखने में दक्ष ब्राह्मणों ने उसकी चिह्न सम्पत्ति को देखकर कहा—"महाराज! कुमार पुण्यवान है। तुम्हारे बाद राज्य प्राप्त करेगा। पांच शस्त्रों के चलाने में प्रसिद्ध होकर जम्बू-द्वीप में अग्रपुरुष होगा।"

ब्राह्मणों की बात सुनकर कुमार का नाम रखनेवालों ने उसका नाम पंचायुधकुमार रखा। उसके होश संभालने पर जब वह सोलह वर्ष का हो गया तो राजा ने बुलाकर कहा—"तात! शिल्प सीख।"

---

१४. पंचायुध जातक। १.६.५५

"देव ! किसके पास ?"

"तात ! जा, गान्धार-देश के तक्षशिला नगर में लोक-प्रसिद्ध आचार्य के पास जाकर सीख । यह उस आचार्य को फीस देना ।"—कहकर उसने हजार मुद्रा दी ।

कुमार ने वहां जाकर विद्या सीखी । आचार्य के दिये हुए पांच शस्त्र लेकर, आचार्य को प्रणाम किया । तक्षशिला नगर से निकलकर, पंच हथियार-बन्द हो वाराणसी का रास्ता लिया । मार्ग में श्लेषलोम यक्ष से अधिकृत एक जंगल के द्वार पर पहुंचा । उसे जंगल के द्वार से गुजरता देख कर मनुष्यों ने उसे रोका—"हो माणवक ! इस जंगल में मत प्रविष्ट हो । इस जंगल में श्लेपलोम नामक यक्ष है । वह जिस किसी मनुष्य को देखता है, उसे मार डालता है ।"

बोधिसत्व अपने बल को तौलते हुए, निर्भीक केसर सिंह की तरह जंगल में घुस ही गया । उसके जंगल-प्रवेश करने पर उसे यक्ष ने घेरा । वह ताड़ जितना ऊँचा था । घर जितना बड़ा सिर, कटोरों जितनी बड़ी-बड़ी आँखें और कन्दल की कली जितने बड़े दांत वाला, सफेद-मुख, चितकबरे पेट तथा नीचे हाथ-पांव वाला होकर अपने-आपको बोधिसत्व को दिखाकर उसने कहा—"कहां जाता है ? ठहर, तू मेरा आहार है ।"

"यक्ष ! मैंने अपनी सामर्थ्य का अन्दाजा लगाकर यहां प्रवेश किया है । तू सम्भलकर मेरे पास आ । मैं तुझे विष से बुझे तीर से बींधकर यहीं गिरा दूंगा ।" इस प्रकार धमकाकर उसने हलाहल-विष से बुझा तीर चलाकर छोड़ा । वह जाकर यक्ष के रोमों में ही चिपक गया । इसके बाद दूसरा ... इस प्रकार पचास तीर छोड़े । सब उसके रोमों में ही चिपक रहे । यक्ष उन सभी तीरों को झाड़-झटककर अपने पैरों में गिरा कर बोधिसत्व के समीप आया ।

बोधिसत्व ने फिर भी उसे डराकर खड्ग निकालकर प्रहार किया । तैंतीस अंगुल लम्बी तलवार उसके रोमों में चिपक गई । तब उसने भाले से प्रहार किया । वह भी रोमों में ही चिपक रहा । तब मुद्गर से प्रहार किया । वह

भी रोमों में चिपक रहा। तब कुमार बोला—"हे यक्ष! क्या तूने मुझ पंचायुधकुमार का नाम पहले नहीं सुना? मैंने तेरे अधिकृत जंगल में प्रवेश करते हुए, धनुष आदि का भरोसा नहीं किया। मैंने अपना ही भरोसा कर प्रवेश किया है। आज मैं तुझे मारकर चूर्ण-विचूर्ण करूंगा।" यह निश्चय प्रकट कर, ऊंचा शब्द करते हुए, दाहिने हाथ से यक्ष पर प्रहार किया। हाथ रोमों में चिपक गया। बाएं हाथ से प्रहार किया, वह भी चिपक गया। दाएँ पैर से प्रहार किया। वह भी चिपक गया। बाएं पैर से प्रहार किया, वह भी चिपक गया। 'सिर से टक्कर मारकर उसे चूर्ण-विचूर्ण करूँगा' सोच कर सिर से प्रहार किया। सिर भी रोमों में चिपक गया।

पांच जगह चिपका हुआ, पांच जगह बंधा हुआ, लटकता हुआ भी वह निर्भय ही रहा। यक्ष ने सोचा—"यह पुरुष-सिंह है, साधारण आदमी नहीं। मेरे सदृश नामवाले यक्ष के पकड़ने पर भी डरता तक नहीं। मैंने इस मार्ग पर हत्या करते हुए इससे पहले एक भी ऐसा आदमी नहीं देखा। यह क्यों नहीं डरता?"

सो उसने, उसे खाने की इच्छा छोड़कर पूछा—"माणवक! तू मरने से किसलिए नहीं डरता?"

"यक्ष! मैं क्यों डरूंगा? एक जन्म में एक बार मरना तो निश्चित है ही। इसलिए पुरुष-कर्म को मैं क्यों छोड़ूं?"

यक्ष उस पर प्रसन्न हुआ। उसने उसे छोड़ने समय कहा—"माणवक! तू पुरुष-सिंह है। मैं तेरा मांस नहीं खाऊंगा। आज तू राहु-मुख से मुक्त चन्द्रमा की तरह मेरे हाथ से छूटकर, जाति-सुहृद-मंडल को प्रसन्न करता हुआ जा।"

"असात-मन्त्र भी तूने सीखे ?"

"अम्मा नहीं सीखे।"

"तात ! यदि तूने असात-मन्त्र नहीं सीखे तो क्या सीखा ? जा सीख कर आ।"

वह 'अच्छा' कह फिर तक्षशिला की ओर चल दिया।

उस आचार्य की एक सौ बीस वर्ष की बूढ़ी माता थी। वह उसे अपने हाथ से नहलाता, खिलाता-पिलाता, उसकी सेवा करता था। उसने एक एकान्त जंगल में पानी मिलने की जगह पर पर्णशाला बनवाई। वहां घी, चावल आदि मंगवाकर अपनी माता की सेवा करता हुआ रहने लगा।

जब वह माणवक तक्षशिला में पहुंचा तो वहां आचार्य को न देखा। उसने पूछा—"आचार्य कहां हैं ?" उस समाचार को सुनकर वह जंगल में गया और आचार्य को प्रणाम कर खड़ा हुआ। आचार्य ने पूछा—"तात ! किस लिए लौट आया ?"

"आपने जो मुझे असात-मन्त्र नहीं सिखाया।"

"तुझे किसने कहा कि असात-मन्त्र सीखना चाहिए ?"

"आचार्य ! मेरी माता ने।"

बोधिसत्व ने सोचा—"असात-मन्त्र तो कोई मन्त्र नहीं है। शायद इसकी माता इसे स्त्रियों के दोषों को विदित करा देना चाहती होगी।"

"अच्छा तात ! तुझे असात-मन्त्र सिखाऊंगा। आज से तू मेरे स्थान पर मेरी माता को नहलाना, खिलाना-पिलाना, उसकी सेवा करना। हाथ पैर, सिर और पीठ दबाते हुए कहना—"आर्ये ! बूढ़ी होने पर भी तेरा शरीर ऐसा है, तो जवानी में कैसा रहा होगा ?" शरीर दबाने के समय हाथ-पैर आदि की प्रशंसा करना। और जो कुछ तुझे मेरी माता कहे, बिना लज्जा के, बिना छिपाए, वह मुझ से कहना। ऐसा करने से असात-मन्त्रों की प्राप्ति होगी, न करने से नहीं होगी।"

"अच्छा आचार्य !" कहकर उस दिन से वह जैसा-जैसा आचार्य ने कहा था, वैसा-वैसा करने लगा।

पर बैठा। "तात! तूने असात-मन्त्र सीख लिया ?"

"हां आचार्य ! मैंने सीख लिया। स्त्रियां असाध्वी होती हैं, पापिनी होती हैं।"

वह आचार्य को प्रणाम कर माता-पिता के पास आया। उसकी माता ने उससे पूछा—"तात ! असात-मन्त्र सीखा ?"

"अम्मा ! हां।"

"तो अब क्या करेगा ? प्रव्रजित होगा या अग्नि-परिचर्या करेगा या गृहस्थ रहेगा ?"

"माता ! मैंने प्रत्यक्षतः स्त्रियों के दोष देख लिये। मुझे अब गृहस्थ बनने की इच्छा नहीं। मैं प्रव्रजित होऊंगा।"

: १६ :

मृदुलक्षणा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र के एक महाधनी ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुए।

आयु प्राप्त होने पर कुमार सब शिल्पों में पारंगत हो गया। लेकिन उसका मन गृहस्थी में न लगा। काम-सुख को छोड वह ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो योगाभ्यास करने लगा।

योगाभ्यास के द्वारा अभिज्ञा तथा समापत्ति-फल को प्राप्त किया। इस प्रकार ध्यान-सुख में रमण करता हुआ वह हिमवन्त प्रदेश में रहने लगा।

एक समय निमक-खटाई खाने के लिए हिमवन्त से उतरकर वह वाराणसी आया। वाराणसी पहुंचकर राजोद्यान में ठहरा। अगले दिन शारीरिक कृत्य समाप्त करके लाल रंग के वल्कल के वस्त्र पहने। एक कंधे पर अजिन-चर्म रखा। जटामण्डल बांधा। झोली-बहंगी लेकर वाराणसी

१६. मृदुलक्षणा जातक। १.७.६६

"महाराज ! मुझे और कोई रोग नहीं है। केवल चित्त के विकार के कारण आसक्त हो गया हूँ।"

"आर्य ! चित्त किस पर आसक्त हो गया है ?"

"महाराज ! मृदुलक्षणा पर।"

"तो आर्य ! मैं आपको मृदुलक्षणा देता हूं।"

राजा तपस्वी को घर ले गया। देवी को सब अलंकारों से अलंकृत कर तपस्वी को दान दिया। देते समय राजा ने मृदुलक्षणा से कहा—"तुझे अपने बल से साधु की रक्षा करनी चाहिए।"

"अच्छा देव !" देवी ने उत्तर दिया।

देवी को लेकर तपस्वी राज-भवन से उतरा। उसने महाद्वार से निकलते ही कहा—"आर्य ! हमें एक घर लेना चाहिए। जाइये राजा से घर मांगिये।" तपस्वी ने जाकर घर मांगा। राजा ने एक ऐसा खाली पड़ा घर दिलवाया जिसमें लोग आकर मल-मूत्र तक त्याग जाया करते थे। वह देवी को लेकर वहां गया। देवी ने उसमें प्रविष्ट होने की अनिच्छा प्रकट की।

"क्यों नहीं प्रवेश करती ?"

"स्थान गन्दा जो है ?"

"अब क्या करूं ?"

"इसे साफ करो। राजा के पास जाकर कुदाली लाओ, टोकरी लाओ।"

देवी ने उससे अशुचि और कूड़ा फेंकवाकर, गोबर मंगवाकर लिपवाया। तदनन्तर कहा—"जाकर चारपाई लाओ, दीपक लाओ, बिछौना लाओ, चाटी लाओ, घड़ा लाओ। घड़ा भरकर पानी लाओ।" तपस्वी ने सारा सामान लाकर रक्खा, बिछौना बिछाया। बिछौने पर इकट्ठे बैठते समय देवी ने तपस्वी की दाढ़ी पकड़कर कहा—"बाबा जी ! तुम्हें कुछ होश भी है ?"

तब उसे अक्ल आई। इतनी देर तक चित्त-विकार के कारण वह अज्ञानी ही रहा। अब उसने सोचा—"यह तृष्णा अधिक होने पर, मुझे चारों-नरकों में से सिर न उठाने देगी। इस मृदुलक्षणा को आज ही राजा

को सौंपकर हिमवन्त में प्रवेश करना चाहिए।

उसने देवी को ले जाकर राजा से कहा—"महाराज! मुझे [illegible] से मतलब नहीं। मैं हिमवन्त जा रहा हूं।"

: १७ :

कंजूस

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। वाराणसी में इल्लीस नाम का एक सेठ था। उसके पास अस्सी [illegible] था। लेकिन वह पुरुष के दुर्गुणों से युक्त, लंगड़ा, लूला, भेंगा [illegible] वान्, अप्रसन्न-चित्त तथा कंजूस था। न किसी को देता, न स्वयं [illegible] खाता था। उसका घर ऐसा ही था जैसे राक्षस-गृहीत पुष्करणी। [illegible] माता-पिता सात पीढ़ी तक दानशील रहे। इसने कुल-वंश [illegible] करके दानशाला जला दी। याचकों को पीटकर बाहर निकाल दि[illegible] धन ही संग्रह करता था।

एक दिन वह राजा की सेवा में गया। लौटते समय उसने एक थके हुए नागरिक को देखा। वह शराब की सुराही से, पी[illegible] कर, मरी हुई मछली खा, रही शराब से प्यास बुझाकर पी [illegible] देखकर उसके मन में शराब पीने की इच्छा हुई। लेकिन [illegible] लगा—"यदि मैं सुरा पीऊंगा तो मेरे पीने पर और बहुत लोग [illegible] इच्छा करेंगे। मेरा धन खर्च होगा।"

उसने तृष्णा को मन से दबा लिया। लेकिन इस तीव्र इच्छा [illegible] करने के कारण उसका शरीर धुनी हुई रुई की तरह सफेद हो ग[illegible] धमनी को जा लगा।

१९. इल्लीस जातक। १. ८. ७८

एक दिन वह चारपाई पर सिमटकर पड़ रहा। उसकी भार्या ने आ कर पीठ मलते हुए पूछा—"स्वामी! क्या रोग है?"

"मुझे कोई रोग नहीं।"

"क्या राजा क्रुद्ध हो गया है?"

"राजा मुझसे क्रुद्ध नहीं हुआ है।"

"तो क्या तुम्हारे बेटा-बेटा, नौकर-चाकरों से कुछ अपराध हो गया है?"

"ऐसा भी कुछ नहीं।"

"तो क्या किसी चीज में तृष्णा हो गई है?"

श्रेष्ठी चुप रहा। तब भार्या ने पूछा—"स्वामी! तुम्हारी तृष्णा किस चीज में है?"

"उसने शब्दों को निगलते हुए की तरह कहा—"मेरी एक तृष्णा है।"

"स्वामी! क्या तृष्णा है?"

"शराब पीने की इच्छा है।"

"तो कहते क्यों नहीं? क्या तुम दरिद्र हो? अब इतनी शराब बनवा दूंगी कि सारे निगम-वासियों के लिए पर्याप्त होगी।"

"तुझे उनसे क्या? वह अपने कमाकर पीएंगे।"

"अच्छा तो उतनी ही तैयार कराऊंगी जो एक गली के लोगों के लिए पर्याप्त होगी।"

"जानता हूं, तू बड़ी धनवान है।"

"अच्छा तो उतनी ही बनवाऊंगी जो इस घरवालों के लिए पर्याप्त होगी।"

"जानता हूँ, तू बड़ी उदार है।"

"अच्छा तो उतनी ही तैयार कराऊंगी जो तुम्हारे स्त्री-बच्चों के लिए पर्याप्त होगी।"

"तुझे इनसे क्या?"

"अच्छा तो उतनी ही तैयार कराऊंगी जो तुम्हारे और मेरे लिए पर्याप्त हो।"

"सेठजी ! दें ।"

"अच्छा देव !"—कहकर राजा को प्रणाम कर शक्र इल्लीस सेठ के घर गया। सब नौकर-चाकर घेरकर खड़े हो गये। कोई भी यह न जान सका कि यह इल्लीस नहीं है। उसने घरमें प्रवेश कर देहली पर खड़े हो द्वारपाल को आज्ञा दी—"यदि कोई ठीक मेरे जैसी शकलवाला आए और 'यह मेरा घर है' कहकर प्रवेश करे तो उसकी पीठ पर प्रहार करके उसे बाहर निकाल देना।" प्रासाद के ऊपर चढ़कर, अत्यन्त मूल्यवान आसन पर बैठकर श्रेष्ठी-भार्या से मुसकराकर कहा—"भद्रे !दान दें ।" यह सुनकर सेठानी, लड़के-लडकियां तथा नौकर-चाकर कहने लगे—"इतने समय तक कभी दान देने का विचार तक नहीं आया। आज शराब पीने के कारण मृदु-चित्त हो दान देने की इच्छा उत्पन्न हो गई होगी !"

सो सेठानी ने कहा—"स्वामी ! यथारुचि दे।" सारे नगर में मुनादी करवा दी गई कि जिसको चांदी, सोना, मणि-मोती की आवश्यकता हो वह इल्लीस सेठ के घर जावे। लोग झोली, थैलो लेकर द्वार पर इकट्ठे हो, गए। शक्र ने सात रत्नों से भरे कमरों को खोलकर कहा—"यह सब तुम्हें देता हूँ। जितनी-जितनी जरूरत हो, ले जाओ।" लोग धन को भर-भर कर ले जाने लगे।

एक देहाती इल्लीस सेठ के ही रथ में, इल्लीस सेठ के ही बैल जोत कर, सात रत्नों से भरकर नगर से बाहर जा रहा था। उस घने स्थान से कुछ दूर पर रथ को हांकता हुआ वह सेठ की प्रशंसा करता जाता था—"स्वामी इल्लीस ! तेरी सौ वर्ष की आयु हो। तेरे कारण अब मैं जन्म भर बिना काम किये भी जी सकता हूं। तेरा ही रथ, तेरे ही बैल, तेरे ही घर के सात प्रकार के रत्न ! न मां ने दिये, न बाप ने दिये, स्वामी ! तेरे ही कारण मिले।"

इल्लीस ने यह शब्द सुनकर भयभीत हो सोचा—"यह मेरा नाम लेकर क्या कहता है ! क्या राजा ने मेरा धन लोगों में बांट दिया है ?" वह तुरन्त उठा और जाकर बैलों की नकेल पकड़ ली—"अरे चेटक ! यह मेरा

ही रथ और मेरे ही बैल कहां लिये जा रहा है ?" गृहपति ने रथ से उतरकर कहा—"अरे दुष्ट चेटक ! इल्लीस सेठ सारे मगधनगर को दान दे रहा है, तेरा क्या लगता है ?" उसने सेठ को झटककर बिजली की तरह गिरा दिया। कन्धे पर प्रहार करके रथ ले चला गया।

सेठ ने कांपते हुए उठकर धूल झाड़ी। तेज़ी से दौड़कर दुबारा फिर रथ को घेरा। गृहपति ने उतरकर उसके बाल पकड़कर बांस की चाबुक से मारा। गला पकड़कर जिधर से वह आया था, उधर मुंह करके धकेल दिया और रथ लेकर चला गया।

इतने में उसका शराब का नशा उतर गया।

उसने कांपते-कांपते घर जाकर मनुष्यों को धन ले जाते देखा। "ओ ! यह क्या ? क्या राजा मेरा धन लुटवा रहा है ?"—कहकर जिस किसीको भी पकड़ना शुरू किया। जिसे पकड़ता, वही उसे पीटकर पैरों में गिरा देता। वेदना से पीड़ित हो उसने घर में घुसना चाहा। द्वारपालों ने पीट कर गर्दन पकड़कर निकाल दिया।

उसने सोचा—"अब राजा के सिवा मुझे किसीकी शरण नहीं।" इसलिए राजा के पास जाकर कहा—"देव ! आप मेरा धन लुटवा रहे हैं ?"

"सेठजी ! क्या तुमने ही अभी आकर नहीं कहा था कि देव ! यदि आप नहीं लेते हैं तो मैं अपने धन को दान दूंगा ?"

"देव ! मैं आपके पास नहीं आया। क्या आप मेरे कंजूस होने की बात नहीं जानते ? मैं किसीको तिनके के कोने से तेल की एक बूंद तक नहीं देता। देव ! जो यह दान दे रहा है, उसे बुलाकर परीक्षा करें।"

राजा ने शक्र को बुलवा भेजा। न तो राजा को ही उन दोनों जनों में कुछ भेद दिखाई दिया, न मन्त्रियों को ही। कंजूस सेठ ने पूछा—"देव ! सेठ यह है कि मैं हूं ?"

"हम नहीं पहचानते। तुझे कोई पहचाननेवाला है ?"

"देव ! मेरी भार्य्या !"

भार्या को बुलाकर पूछा गया—"तेरा स्वामी कौन है ?" वह शक्र ही के पास जाकर खड़ी हो गई। लड़के-लड़कियों, नौकर-चाकरों को बुलाकर पूछा। सब शक्र ही के पास जाकर खड़े हो गए।

तब सेठ ने सोचा—"मेरे सिर में बालों से छिपी एक फुन्सी है। उसे केवल नाई ही जानता है, सो उसे बुलवाऊं।" उसने कहा—"देव ! मुझे नाई पहचानता है। उसे बुलवावें।" राजा ने उसे बुलवाकर पूछा—"इल्लीस सेठ को पहचानते हो ?"

"देव ! सिर को देखकर पहचान सकूंगा।"

शक्र ने उसी क्षण सिर में फुन्सी पैदा कर ली। नाई ने दोनों के सिर में फुन्सी देख कर कहा—"महाराज ! दोनों के सिर में फुन्सी है। मैं इन दोनों में से किसीको नहीं कह सकता कि यह इल्लीस सेठ है।"

नाई की बात सुनकर सेठ कांपने लगा। धन-शोक से अपने को संभाल न सकने के कारण वहीं गिर पड़ा। उस समय शक्र शक्र-लीला से आकाश में जाकर खड़ा हुआ। उसने कहा—"महाराज ! मैं इल्लीस नहीं, शक्र हूं।"

इल्लीस का मुंह पोंछकर उस पर पानी छिड़का गया। वह उठकर देवेन्द्र शक्र को प्रणाम कर खड़ा हुआ। तब शक्र ने कहा—"इल्लीस ! यह धन मेरा है, न कि तेरा। मैं तेरा पिता हूँ, तू मेरा पुत्र। मैंने दानादि पुण्य-कर्म करके शक्र की पदवी ग्रहण की। लेकिन तूने मेरे वंश की मर्यादा को तोड़ दिया। कंजूस होकर दानशाला को जला दिया, याचकों को बाहर निकाल दिया। खाली धन-संग्रह करता है। न तू आप खाता है, न दूसरे को देता है। धन ऐसे पड़ा है, जैसे राक्षस के अधिकार में हो। यदि जैसे पहले था, वैसे ही दानशाला बनवाकर दान देगा तो तेरी कुशल है, नहीं तो तेरे सब धन को अन्तर्धान कर इन्द्र-वज्र से तेरा सिर फोड़कर जान निकाल दूंगा।"

इल्लीस सेठ ने मरने के भय से संत्रसित होकर प्रतिज्ञा की कि वह दान देगा। उसकी प्रतिज्ञा ग्रहण कर शक्र अपने स्थान को चला गया।

कर रस्सी से पीट रहे थे। वह काम करके मजदूरी* नहीं ला सक रही थी।
उस दासी का नाम था 'धनपाली'। पापक ने गली में से गुजरते हुए उसे पिटते देखकर पूछा—"इसे क्यों पीट रहे हैं?"

"यह मजदूरी नहीं ला दे सक रही है।"

"इसका नाम क्या है?"

"इसका नाम है धनपाली।"

"नाम से धनपाली है, तो भी मजदूरी मात्र भी नहीं ला दे सक रही है।"

"धनपाली भी दरिद्र होती है, अधनपाली भी। नाम बुलाने भर को होता है। मालूम होता है, तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति कुछ और उदासीन होकर नगर से निकला। रास्ते में उसने एक आदमी को देखा, जो रास्ता भटक गया था। वह रो रहा था। उसने उससे पूछा—"तुम क्यों रो रहे हो?"

"मैं रास्ता भूल गया हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"पन्थक।"

"पन्थक भी रास्ता भूलते हैं?"

"पन्थक भी भूलते हैं, अपन्थक भी भूलते हैं। नाम पुकारने भर के लिए है। मालूम होता है, तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति बिल्कुल उदासीन होकर बोधिसत्व के पास गया। बोधिसत्व ने पूछा—"क्यों तात! अपनी रुचि का नाम ढूंढ लाये?"

"आचार्य! जीवक भी मरते हैं, अजीवक भी। धनपाली भी दरिद्र होती है, अधनपाली भी। पन्थक भी रास्ता भूलते हैं, अपन्थक भी। नाम बुलाने भर को होता है। नाम से सिद्धि नहीं होती; कर्म से ही सिद्धि होती है। मुझे दूसरे नाम की जरूरत नहीं है। मेरा जो नाम है, वही रहे।"

* पूर्व समय में लोग दासियों को रखकर उनसे मजदूरी करवाते थे।

: १९ :

हल की फाल

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व एक महा ऐश्वर्यशाली ब्राह्मण के कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जाकर सब विद्याएं सीखीं। लौटकर वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य हुए।

वह आचार्य वाराणसी में पांच सौ शिष्यों को शिल्प सिखाता था। उन शिष्यों में एक जड़-मूर्ख शिष्य था। वह आचार्य-दक्षिणा देने में असमर्थ था, इसलिए आचार्य की सेवा करता हुआ शिल्प सीखता था। अपनी जड़ता के कारण वह कुछ न सीख सकता था, लेकिन था आचार्य की बहुत सेवा करनेवाला। 'दास' की तरह सब काम करता था।

एक दिन बोधिसत्व शाम का भोजन करके लेटे थे। वह विद्यार्थी हाथ, पैर, पीठ दबाकर जा रहा था। बोधिसत्व ने कहा— "तात! चारपाई के पायों को सहारा देकर जा।" विद्यार्थी को एक पाए का सहारा मिला, दूसरे का न मिला। सारी रात बिता दी। बोधिसत्व ने प्रातः उठकर उसे देखा। पूछा—"तात! क्यों बैठा है?"

"आचार्य! चारपाई के पाए का सहारा न मिला, इसलिए [illegible] बैठा हूं।"

बोधिसत्व का दिल भर आया। वे सोचने लगे—'यह मेरी बहुत सेवा करता है। लेकिन इतने विद्यार्थियों में सबसे जड़मति है, शिल्प नहीं सीख सकता। मैं इसे कैसे पण्डित बनाऊं?' तब उन्हें एक उपाय सूझा— मैं इस विद्यार्थी को लकड़ियां और पत्ते लेने को भेजूंगा। लौटने पर पूछूंगा— आज तूने क्या देखा? क्या-क्या किया? तब यह मुझे बतलाएगा कि आज यह देखा, यह किया। तब मैं इससे पूछूंगा कि तो [illegible]

१९. नङ्गलीस जातक। १.१२.१२३

वह कैसा है ? वह मुझे उपमा देकर बातों से समझायगा—ऐसा है, ऐसा नहीं है। इस प्रकार इससे नई-नई उपमाएं, बातें कहलवाकर मैं इसे पण्डित बना दूंगा।"

तब उन्होंने उसे बुलाकर कहा—"तात माणवक ! अब से तू जहाँ लकड़ी या पत्ते लेने जाय, वहां जो देखे, जो सुने, जो खाए-पिये, वह मुझ से आकर कहा कर।" उसने 'अच्छा' कहकर स्वीकार किया।

एक दिन वह विद्यार्थियों के साथ लकड़ी लेने जंगल गया। वहां उसने एक सांप देखा। आकर आचार्य से कहा—"आचार्य ! मैंने सांप देखा।"

"तात ! सांप कैसा होता है ?"

"हल की फाल की तरह।"

"तात ! बहुत अच्छा। तूने सुन्दर उपमा दी। सांप हल की फाल की ही तरह होते हैं।"

बोधिसत्व ने सोचा—"विद्यार्थी को अच्छी उपमा सूझी है। मैं इसे पण्डित बना सकूंगा।"

विद्यार्थी ने फिर एक दिन जंगल में हाथी देखकर कहा—"आचार्य ! मैंने हाथी देखा।"

"तात ! हाथी कैसा होता है ?"

"हल की फाल की तरह।"

बोधिसत्व सोचने लगे—"हाथी की सूंड़ तो हल के फाल की तरह होती है; लेकिन उसके दांत आदि तो ऐसे-ऐसे होते हैं। मालूम होता है यह अपनी मूर्खता के कारण पृथक-पृथक करके वर्णन नहीं कर सकता।" वे चुप रहे।

एक दिन विद्यार्थी को ऊख मिली। उसने कहा—"आचार्य ! आज ऊख चूसी।"

"ऊख कैसी होती है ?"

"हल की फाल की तरह।"

'थोड़ी सीधी बात कहता है', सोच आचार्य चुप रहे। फिर एक दिन

"मेरा नाम है धार्मिक।"

"चारों पैर पृथ्वी पर न रख, एक ही पैर से क्यों खड़े हैं ?"

"मेरे चारों पैर पृथ्वी पर रखने से पृथ्वी के लिए दूभर होगा; इसलिए एक ही पैर से खड़ा हूं।"

"मुंह खोले क्यों खड़े हैं ?"

"हम हवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाते।"

"सूर्य की ओर मुँह करके क्यों खड़े हैं ?"

"सूर्य को नमस्कार कर रहा हूं।"

बोधिसत्व ने सोचा, यह पक्का सदाचारी है। इसके बाद से वह चूहों के समूह के साथ प्रातः-सायं उसकी सेवा में जाने लगा।

जब वे चूहे उसकी सेवा करके लौटते तो वह शृगाल सबसे पिछले चूहे को पकड़कर खा जाता और मुँह पोंछकर खड़ा हो जाता। इस प्रकार क्रम से खाते-खाते चूहों का दल कमजोर पड़ गया। चूहे सोचने लगे कि पहले हमें यह बिल पर्याप्त नहीं होता था, सट-सटकर खड़े होते थे। अब खुलकर खड़े होते हैं, तब भी बिल नहीं भरता। क्या मामला है ?

यह सोचते हुए बोधिसत्व ने शृगाल पर शक किया। उन्होंने इसकी जांच करनी चाही। इसलिए जब चूहे शृगाल की सेवा से लौटने लगे तो बोधिसत्व सब चूहों को आगे कर स्वयं पीछे रहे। शृगाल उस पर उछला। अपने को पकड़ने के लिए शृगाल को उछलता देखकर बोधिसत्व ने कहा—"भो शृगाल ! तेरा यह व्रत धार्मिक नहीं है। तू दूसरों की हिंसा करने के लिए ही धर्म को आगे करके रहता है।"

इस प्रकार कहते हुए चूहों का राजा उछलकर उसकी गर्दन पर चढ़ बैठा। ठोडी के नीचे की नाली पकड़कर फाड डाली। शेष चूहों ने भी रुक कर मदद की। शृगाल मर गया। सबने उसे मुर-मुर करके खा डाला। उसके बाद से चूहों का दल निर्भय हो गया।

: २१ :

जैसा भोजन वैसा काम

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ब्राह्मणों के एक कुल में पैदा हुए। सयाने होने पर वाराणसी के प्रसिद्ध आचार्य हुए। प्रायः एक सौ राजधानियों के क्षत्रिय-[illegible] [illegible] पास विद्या सीखते थे।

एक जनपदवासी ने बोधिसत्व के पास तीनों वेद और अठारह [illegible] सीखीं। वह वाराणसी में ही रहता था। दिन में दो-तीन बार बोधिसत्व के पास आता-जाता।

एक बार वह एक सप्ताह के बाद बोधिसत्व के पास पहुँचा। उन्होंने पूछा—"ब्राह्मण! दिखाई नहीं दिया?"

"आचार्य! मेरी ब्राह्मणी के शरीर को वायु बींधती है। सो मैं [illegible] लिए घी, तेल तथा अच्छे-अच्छे भोजन खोजता हूँ। उसका शरीर मोटा हो गया है। चमड़ी निखर आई है। लेकिन वात-रोग [illegible]। [illegible] दिखाई देता। मैं उसकी सेवा में ही लगा रहता हूँ। इसीलिए [illegible] अवकाश नहीं मिलता।"

असल में वह ब्राह्मणी दुश्चरित्रा थी। [illegible] बहाना बनाकर बड़बड़ाती हुई लेट जाती।

वह ब्राह्मण उससे पूछता—"भद्रे! तुझे क्या कष्ट है?"

"मुझे वायु बींधती है।"

"तो तुझे क्या-क्या चाहिए?"

"चिकने, मीठे, [illegible], स्वादिष्ट यवागू-भात तैल आदि।"

जो-जो वह इच्छा करती, ब्राह्मण ला-लाकर देता। [illegible] काम करता। लेकिन वह ब्राह्मण के घर आने के समय [illegible]

२१. कोसिय जातक : १.१२.१३०

जाने पर यारों के साथ गुजारा करती।

बोधिसत्व ने समझ लिया कि वह इसे धोखा देकर लेटी रहती है। इसलिए उन्होंने कहा—"तात! अब से तुम उसे दूध, घी, रस आदि मत दो। गोमूत्र में त्रिफला आदि और पांच प्रकार के पत्ते रखकर उनका काढ़ा बनाओ। जब औषधि तांबे के रंग की हो जाय तो उसे नये बर्तन में रखकर रस्सी, जोत या कोई छड़ी ले जाकर कहना—"यह तेरे रोग के लिए उचित दवाई है। या तो इसे पी, नहीं तो जो भोजन तू करती है, उसके मुताबिक काम कर।" और अगर न माने तो रस्सी, जोत या छड़ी से प्रहार करके केशों को पकड़कर खींचना। खींचकर कोहनी से पीटना। उसी समय उठ कर वह काम करने लगेगी।"

वह बोधिसत्व के कथनानुसार दवाई बनाकर ले गया। बोला—"भद्रे! यह औषधि पी।"

"यह औषधि तुम्हें किसने बताई?"

"भद्रे! आचार्य ने!"

"इसे ले जाओ। नहीं पीऊंगी।"

ब्राह्मण ने कहा—"तू स्वेच्छा से नहीं पीएगी।" छड़ी लेकर बोला—"या तो रोग के अनुसार दवाई पी अथवा यवागु-भात के अनुसार काम कर। क्योंकि तेरी वाणी और तेरे भोजन का मेल नहीं बैठता।"

ऐसा कहने पर कोसिय ब्राह्मणी ने सोचा—अब आचार्य का ध्यान आकृष्ट हो गया है। आचार्य ने मेरी दुश्चरित्रता जान ली। अब मैं इसे धोखा नहीं दे सकती। अब मैं उठकर काम करूँ।

वह उठकर काम करने लगी।

: २२ :

मित्र-धर्म

पूर्वकाल में मगध देश के राजगृह नगर में एक राजा राज्य करता था। बोधिसत्त्व उस समय उस नगर के ही एक सेठ थे। उनके पास अस्सी करोड़ धन था। नाम था संख सेठ। इसी प्रकार वाराणसी में भी एक पीलिय नामक सेठ था। उसके पास भी अस्सी करोड़ धन था। वे दोनों परस्पर मित्र थे।

एक बार वाराणसी के पीलिय सेठ पर किसी कारण संकट आ पड़ा। तमाम जायदाद नष्ट हो गई। वह दरिद्र हो गया। तब वह वाराणसी से निकलकर पैदल ही अपनी स्त्री के साथ राजगृह में संख सेठ के घर गया।

उसने उसे देखते ही पहचान लिया—मेरा मित्र आया है। गले मिल कर आदर-सत्कार किया। फिर कुछ दिन बीत जाने पर पूछा—'मित्र! कैसे आये?'

"सौम्य! मुझ पर संकट आ पड़ा। मेरा सब धन नष्ट हो गया। मुझे सहारा दें।"

"अच्छा मित्र! डरें नहीं।" [illegible] उसने [illegible] चालीस करोड़ 'हिरण्य' निकलवाया। उसके साथ अपने पास के [illegible] जानवर और [illegible] भी [illegible]। वह उस धन को लेकर वाराणसी लौट आया।

[illegible] संख सेठ पर भी [illegible]। [illegible] लिए [illegible]—[illegible] मित्र [illegible] किया। [illegible] मुझे देखकर [illegible]। [illegible]

[illegible]

२२. [illegible]

नगर में पहुँचकर अपनी भार्या से कहा—"भद्रे! तेरे लिए यह अच्छा नहीं है कि तू मेरे साथ गली-गली भटके। मैं जाकर सवारी भेजूंगा। तू पीछे बड़े ठाट से उस पर आना।"

उसे एक शाला में बिठा स्वयं नगर में दाखिल हुआ। सेठ के घर पहुँच कर सूचना भिजवाई कि राजगृह से तुम्हारा मित्र आया है। सेठ बोला—"आ जाय।" उसे देखकर न वह आसन से उठा, न स्वागत ही किया; केवल इतना ही पूछा—"क्यों आया है?"

"तुम्हें देखने आया हूं।"

"निवास-स्थान कहां ठीक किया है?"

"अभी कहीं ठीक नहीं हुआ है। सेठानी को शाला में बिठाकर आया हूँ।"

"यहां तुम्हारे ठहरने को जगह नहीं। सीधा लेकर किसी जगह पका-खाकर चले जाओ।" इतना कहकर अपने एक दास को आज्ञा दी कि मित्र के पल्ले में एक तूंबा भर भूसा बांध दो।

उसी दिन उसने एक हजार गाडी लाल चावल छटवाकर कोठे भरे थे। चालीस करोड़ धन लेकर आये अकृतज्ञ महाचोर ने मित्र को केवल एक तूंबा भर भूसा दिलवाया! दास एक टोकरी में तूंबा भर भूसा डाल कर बोधिसत्व के पास गया।

बोधिसत्व ने सोचा—'यह असत्पुरुष मेरे पास से चालीस करोड़ धन पाकर अब तूंबा भर भूसा दे रहा है! इसे लूं अथवा न लूं? उसे विचार हुआ—यह तो अकृतज्ञ है, मित्र-द्रोही है; कृत-उपकार को भूलकर इसने मेरे साथ मैत्री-सम्बन्ध तोड़ डाला है। यदि मैं इसका दिया तूंबा भर भूसा बुरा होने के कारण नहीं ग्रहण करता हूं तो मैं भी मैत्री-सम्बन्ध तोड़नेवाला होता हूं। इसलिए मैं इसके दिये तूंबे भर भूसे को ग्रहण कर अपनी ओर से मैत्री-भाव की प्रतिष्ठा करूंगा।'

उसने तूंबे भर भूसे को अपने पल्ले में बांध लिया और महल से उतर शाला को गया।

"देव ! ठीक है ।"

"तेरी आशा लगाकर तेरे पास आने पर तूने भी इसका कोई सत्कार-सम्मान किया ?"

वह चुप रहा ।

"तूने तूंआ भर भूला इसके पल्ले में डलवाकर दिया ?"

इसे भी सुनकर वह चुप ही रहा ।

राजा ने मन्त्रियों से सलाह की कि क्या करना चाहिए ? सबने पीलिय सेठ की निन्दा की । राजा ने आज्ञा दी—"जाओ, पीलिय सेठ के घर में जितना धन है, वह सब संघ सेठ को दे दो ।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"महाराज ! मुझे पराया धन नहीं चाहिए । जितना धन मैंने दिया है, उतना ही दिलवा दो ।"

राजा ने बोधिसत्त्व का धन दिलवा दिया ।

बोधिसत्त्व ने अपना सारा धन लेकर दास-समूह-सहित राजगृह जाकर अपना कुटुम्ब बसाया ।

: २३ :

सोने के पर

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था । उस समय बोधिसत्त्व एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए । जब वे बड़े हुए तो उनके समान जाति-कुल से एक भार्या ला दी गई । उससे उन्हें नन्दा, नन्दवती और नन्द-सुन्दरी तीन लड़कियां हुईं । उनका विवाह होने से पूर्व ही बोधिसत्त्व मर गए और स्वर्ण-हंस होकर पैदा हुए ।

२३. सुवण्णहंस जातक । १.१४.१३६

बिना जबर्दस्ती लिये जाने के कारण बगुले के पंख सदृश हो गए।

अब बोधिसत्व पंख पसारकर उड़ न सके। ब्राह्मणी ने उन्हें मटके में रखकर पाला। उनके जो नये पर निकले, श्वेत ही निकले। पंख निकलने पर वह उड़कर अपने स्थान पर चले आये। फिर वहां नहीं गए।

: २४ :

चुहिया और बिल्ली

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व एक पत्थर-कट के कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर वह अपने शिल्प में पारंगत हो गए।

काशी देश के एक कस्बे में एक बड़ा धनवान सेठ था। उसका गड़ा हुआ खजाना ही चालीस करोड़ सोना था।

उसकी स्त्री मरी तो धन के स्नेह से चुहिया होकर पैदा हुई। वह उस खजाने पर रहने लगी। उसका वह कुल नष्ट हो गया। वंश उजड़ गया। वह गांव भी ध्वस्त हो नाम-शेष रह गया।

उन दिनों बोधिसत्व जहां पहले गांव था, उसी जगह के पत्थर उखाड़ कर उन्हें तराशते थे। उस चुहिया ने अपने आस-पास बोधिसत्व को आते-जाते देखा तो उसके मन में स्नेह पैदा हो गया। उसने सोचा—"मेरा बहुत-सा धन निष्प्रयोजन नष्ट हुआ जाता है। मैं और यह पुरुष इकट्ठे मिलकर इस धन को खायेंगे।" एक दिन वह मुँह में कार्षापण पकड़े हुए बोधिसत्व के पास पहुंची। बोधिसत्व ने प्रिय-वाणी का प्रयोग करते हुए पूछा—

"अम्म! कार्षापण लेकर क्यों आई है?"

"तात! इसे लेकर स्वयं भी खायें और मेरे लिए भी मांस लायें।"

---

२४. बब्बु जातक। १.१४.१३७

चुहिया बोली—"अरे दुष्ट बिलार! क्या मैं तेरी नौकर हूँ कि मांस लाकर दूं? अपने पुत्रों का मांस खा।"

बिल्ला नहीं जानता था कि चुहिया स्फटिक-गुहा के अन्दर है। उसने क्रोध से सहसा आक्रमण किया कि चुहिया को पकड़ूंगा। उसका हृदय स्फटिक-गुहा से टकराया और उसी समय चूर-चूर हो गया। आंखें निकल आईं। वह वहीं गिरकर मर गया।

उसके बाद चुहिया निर्भय हो गई। वह बोधिसत्व को प्रतिदिन दो-तीन कार्षापण देती। इस प्रकार उसने सारा धन बोधिसत्व को ही दे दिया। वे दोनों मित्र-भाव से रह यथा-कर्म परलोक सिधारे।

: २५ :

गोह

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व गोह की योनि में पैदा हुए।

उस समय पाँच अभिञ्ञा प्राप्त एक उग्र तपस्वी एक गाँव के समीप जंगल में पर्णकुटी में रहता था। ग्रामवासी तपस्वी की अच्छी तरह सेवा करते थे। गोह उसके टहलने की जगह के पास एक बिल में रहता था। प्रतिदिन दो-तीन बार आकर तपस्वी के पास धर्म तथा अर्थपूर्ण बातें सुनता। फिर तपस्वी को प्रणाम कर अपने निवास-स्थान लौट जाता।

कुछ दिनों बाद वह तपस्वी गाँव-वासियों को पूछकर वहां से चला गया। उस शीलव्रत-सम्पन्न तपस्वी के चले जाने पर एक दूसरा कुटिल तपस्वी आकर उसी स्थान पर रहने लगा। गोह उसे भी पहले ही तपस्वी की तरह सदाचारी समझ उसके पास गया।

एक दिन ग्रीष्म-ऋतु में अकाल वर्षा बरसने पर बिलों से मक्खियाँ

---

२५. गोध जातक। १. १४. १३८

से तो तू इतना मैला है और बाहर से इतना धोता है !"

: २६ :

न घर का न घाट का

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व एक वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए।

उसी समय एक गांव में कुछ मछुए रहते थे। एक मछुआ जाल लेकर अपने छोटे पुत्र के साथ तालाब में मछली पकड़ने गया। उसने पानी में जाल फेंका। जाल पानी से छिपे हुए एक ठूंठ में जा फंसा। मछुए ने जब देखा कि वह निकलता नहीं है तो सोचा—"कोई बड़ी मछली फंसी होगी। क्यों न मैं लड़के को उसकी मां के पास भेजकर पड़ोसी से झगड़ा करा दूं। तब इसमें से कोई हिस्सा पाने की आशा न करेगा।" उसने पुत्र से कहा—"तात ! जा, मां से कह कि हमें बड़ी मछली मिली है और यह भी कह कि वह पड़ोसी से झगड़ा कर ले।'

पुत्र को घर भेजने के बाद वह स्वयं जाल को खींचने लगा। वह नहीं खींच सका। रस्सी टूटने के भय से उसने अपने ऊपर के कपड़े उतारकर जमीन पर रखे और पानी में उतरा। मछली के लोभ में, मछली को ढूंढते हुए, वह ठूंठ से टकरा गया। उसकी दोनों आँखें फूट गईं। जमीन पर रखे कपड़े चोर ले गए।

वह पीड़ा से पागल हो, हाथ से आंखों को दबाए, पानी से बाहर निकला। कांपते हाथों कपड़े खोजने लगा।

इधर उसकी भार्या ने सोचा कि मैं झगड़ा करके ऐसा कर दूं कि कोई कुछ पाने की आशा न रखे। उसने एक कान में ताड़ का पत्ता पहना, एक आंख में हांडी का काजल लगाया और गोद में कुत्ता लेकर पड़ोसी के घर

२६. उभतोभट्ठ जातक। १.१४.१२९

इस प्रकार अपनी जीविका चलाते हुए वे लोग पड़ाव डालकर जंगल में पड़े हुए थे। एक दिन एक हाथी लंगड़ाता हुआ उनके पड़ाव के पास आया। उसके पैर में एक खूंटा चुभ गया था। बड़ी पीड़ा हो रही थी। पैर सूज गया था। उसमें से पीव बहने लगी थी।

हाथी ने लकड़ी काटने का शब्द सुनकर सोचा कि यहां बढ़ई रहते होंगे, उनसे मेरा कल्याण होगा। ऐसा समझकर तीन पैरों से चलकर उनके पास पहुंचा और वहीं नजदीक ही पड़ रहा।

बढ़ई उसका सूजा हुआ पैर देखकर पास गए। उन्हें उसमें खूंटा दिखाई दिया। तेज कुल्हाड़े से खूंटे के चारों ओर गहरा निशान कर, उसमें रस्सी बांधकर खींचा। खूंटा निकालकर पीव निचोडी। गरम पानी से धोया। अनुकूल दवा करने से थोड़े ही समय में घाव ठीक हो गया।

नीरोग होकर हाथी ने सोचा—इन बढ़इयों ने मेरी जान बचाई। मुझे इनकी कुछ सेवा करनी चाहिए। उस दिन से वह बढ़इयों के साथ वृक्ष लाने लगा। छीलने के समय उन्हें उलट-पुलटकर सामने करता, कुल्हाड़ी आदि औजार ले आता। सूंड में लपेटकर काले धागे के सिरे को पकड़ लेता। बढ़ई भी भोजन के समय इसे एक-एक पिण्ड देते तो पांच सौ पिंड हो जाते।

उस हाथी का एक बच्चा था। वह एकदम श्वेत वर्ण का था और था मंगल हाथी। हाथी ने सोचा, मैं बूढ़ा हो गया। अब मुझे इन बढ़इयों को काम करने के लिए अपने लड़के को देकर स्वयं जाना चाहिए। वह बढ़इयों को बिना सूचित किये ही जंगल में गया। वहां से लडके को लाकर बढ़इयों से बोला—"यह मेरा लड़का है। तुमने मुझे जीवन-दान दिया है। मैं डाक्टर की फीस के बदले इसे देता हूं। अब से यह तुम्हारी सेवा किया करेगा।" इतना कहकर पुत्र को आदेश दिया—"पुत्र! जो कुछ मेरा काम है, उस काम को अब से तू करना।" उसे बढ़इयों को सौंप हाथी ने स्वयं जंगल में प्रवेश किया।

उस समय से वह हाथी-बच्चा बढ़इयों के कहने के अनुसार सब काम

"अरे, हाथी क्या करता है ?"

"देव ! जिससे बढ़इयों का पोषण हो, वह लाता है।"

राजा ने "अच्छा भाई" कहा और हाथी की सूंड के पास, पूंछ के पास और चारों पैरों के पास एक-एक लाख कार्षापण रखवाए। इतने पर भी हाथी नहीं गया। सब बढ़इयों को दुशाले, उनकी स्त्रियों को पहनने के वस्त्र तथा साथ खेलनेवाले बच्चों के पालन-पोषण का प्रबन्ध होने पर, बढ़इयों को पीछे न आने दे, स्त्रियों और बच्चों को देखता हुआ वह राजा के साथ चला गया।

राजा उसे लेकर नगर पहुंचा। नगर और हस्तिशाला को अलंकृत करवाया। हाथी को नगर की प्रदक्षिणा करवा हस्तिशाला में ले जाया गया। सभी तरह के गहने पहनाकर, अभिषेक कर उसे राजा की सवारी बनाया। फिर उसे अपना मित्र घोषित कर राजा ने आधा राज्य हाथी को दे दिया। राजा ने उसे अपना बराबर का दर्जा दिया।

हाथी के आने के समय से सारे जम्बूद्वीप का राज्य राजा के हाथ में आया जैसा ही हो गया।

कुछ दिनों बाद बोधिसत्व ने उस राजा की पटरानी की कोख में प्रवेश किया। उसके गर्भ के पूरा होते-होते राजा मर गया। लोगों ने सोचा, यदि हाथी को राजा के मरने का पता चलेगा तो उसका हृदय फट जाएगा। इसलिए हाथी से राजा के मरने की बात गुप्त रखकर वे उसकी सेवा करते रहे।

ठीक पड़ोस के कोशल राजा ने जब सुना कि वाराणसी नरेश मर गए तो उसने राज्य को खाली देख, बड़ी सेना ला, नगर घेर लिया। नगर-निवासियों ने नगर के दरवाजे बन्द कर कोशल राजा के पास सन्देश भेजा—

"हमारे राजा की पटरानी गर्भवती हैं। अंगविद्या के जाननेवाले का कहना है कि अब से सातवें दिन पुत्र होगा। यदि वह पुत्र को जन्म देगी तो हम आज से सातवें दिन राज्य न देकर युद्ध करेंगे। इतने दिन प्रतीक्षा करें।"

: २८ :

बड़ा कौन है ?

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म लिया। नामकरण के दिन उसका नाम ब्रह्मदत्त कुमार ही रखा गया।

क्रम से बढ़ते हुए सोलह वर्ष की आयु में वह तक्षशिला शिल्प सीखने गया। सब शिल्पों में निष्णात हो घर लौटा। पिता के मरने पर राजा बन, धर्म तथा न्याय से राज्य करने लगा। राग आदि के वशीभूत न होकर वह मुकद्दमों का फैसला करता। उसे धर्म से राज्य करते देख अमात्य भी धर्म से ही मुकद्दमों का फैसला करते। मुकद्दमों का धर्म से फैसला होने के कारण झूठे मुकद्दमे करने वाले नहीं रहे। उनके न होने से राजाङ्गण में मुकद्दमे करने वालों का शोर नहीं होता था। अमात्य सारा दिन न्यायालय में बैठे रहकर भी जब किसी को मुकद्दमा पेश करते न देखते तो उठकर चले जाते। न्यायालय खाली पड़ गए।

बोधिसत्व सोचने लगे—मेरे धर्मानुसार राज्य करने के कारण मुकद्दमा करने वाले नहीं आते। शोर नहीं होता। न्यायालय खाली पड़ गए। अब मुझे अपने दुर्गुणों की खोज करनी चाहिए। जब मुझे पता लग जायगा कि मेरे दुर्गुण ये हैं तो उन्हें छोड़कर गुणवान बनकर ही रहूंगा।

उसके बाद से वह खोजने लगा कि कोई मेरे दोष कहने वाला है ? उन्हें महल के अन्दर कोई ऐसा नहीं मिला जो उसके दोष कहता। जो मिला, प्रशंसा करने वाला ही मिला। 'यह मेरे से मेरी प्रशंसा ही करते होंगे' सोच महल के बाहर रहने वालों की परीक्षा की। वहां भी कोई न मिला। नगर के अन्दर खोज की। नगर के बाहर चारों दरवाजों पर स्थित गांवों में खोजा। वहां भी कोई दोष कहने वाला न मिला। प्रशंसा ही सुनने को मिली।

---

२८. राजोवाद जातक। २.१.१५१

शीलवान होगा उसे जगह दी जायगी। उसने पूछा—"सारथि! तुम्हारे राजा का सदाचार कैसा है?"

उसने अपने राजा के गुणों को बताते हुए कहा—

"मल्लिक कठोर के साथ कठोरता का व्यवहार करता है, कोमल के साथ कोमलता का। भले आदमी को भलाई से जीतता है, बुरे को बुराई से। सारथि! यह राजा ऐसा है। तू मार्ग छोड़ दे।"

तब वाराणसी राजा के सारथी ने पूछा"—भो! क्या तुमने अपने राजा के गुण कह लिए?"

"हाँ।"

"यदि यही गुण हैं तो अवगुण कैसे होते हैं?"

"अच्छा यह अवगुण ही सही। तुम्हारे राजा में कौन से गुण हैं?"

"अच्छा तो सुनो—"

क्रोधी को अक्रोध से जीतता है। बुरे को भलाई से। कंजूस को दान से। झूठे को सत्य से। यह राजा ऐसा है; इसलिए सारथी तू मार्ग छोड़ दे।"

ऐसा कहने पर मल्लिक राजा तथा उसके सारथी ने उतरकर, घोड़ों को खोला, रथ को हटाया और वाराणसी के राजा को मार्ग दिया।

: २९ :

गिद्ध

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्त्व गृध्र-पर्वत पर गृध्र होकर पैदा हुए थे। बड़े होने पर माता-पिता का पालन-पोषण करने लगे।

---

२९. गिज्झ-जातक। २.२.१६४

"हमें उसने जीवन-दान दिया था। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए, इसलिए।"

राजा ने पूछा कि गिद्ध तो सौ योजन की दूरी से लाश को देख लेते हैं, तूने अपने लिए फैलाए फंदे को क्यों नहीं देखा?"

गिद्ध ने जवाब दिया—

"जब विनाश का समय आता है, जब जीवन पर संकट आता है, तब प्राणी पास में पड़े हुए जाल और फंदे को भी नहीं देखता।"

गिद्ध की बात सुन राजा ने सेठ से पूछा—

"महासेठ! क्या यह सच है? क्या गिद्ध तुम्हारे घर वस्त्र आदि लाये हैं?"

"देव! सच है।"

"वह कहां हैं?"

"देव मैंने सब पृथक रखे हैं। जो जिसका है वह उसे दूंगा। इस गिद्ध को छोड़ दें।"

गिद्ध को छुड़वाकर सेठ ने जो जिसका था वह उसे दिलवाया।

: ३० :

चाण्डाल का जूठा भोजन

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ने चाण्डाल का जन्म लिया।

एक बार वह किसी काम से कहीं जा रहे थे। रास्ते में खाने के लिए चावल और भात की पोटली हाथ में थी। उसी समय वाराणसी में एक माणवक था। नाम था सतधम्म। उदीच्च गोत्र के महाधनवान कुल में पैदा हुआ था। वह भी किसी काम से निकल पड़ा। किन्तु उसने रास्ते में खाने

---

३०. सतधम्म जातक। २. ३. १७९

समय उसके मुंह से रक्त सहित भात बाहर आया।

इस शोक से शोकाकुल हो वह रोने लगा—

"वह थोड़ा-सा था। जूठा था और वह भी उसने कठिनाई से दिया। ब्राह्मण जाति का होकर मैंने वह खाया। जो खाया सो भी निकल गया।"

इस प्रकार रो-पीट कर 'मैंने ऐसा अनुचित काम किया, अब जीकर क्या करूंगा' सोच माणवक जंगल में चला गया। वहां सबसे छिपे रहकर अनाथ-मरण मरा।

: २१ :

राजा दधिवाहन

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय काशी-राष्ट्र में चार ब्राह्मण भाई ऋषियों की प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुए। वे हिमवन्त प्रदेश में पर्णशालाएं बनवा कर रहने लगे।

कुछ दिनों बाद ज्येष्ठ भाई मरकर शक्र देवता हुआ। वह बीच-बीच में सातवें-आठवें दिन भाइयों की सेवा में आता था। एक दिन उसने ज्येष्ठ तपस्वी को प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—"भन्ते! आपको किस बात की जरूरत है?"

पाण्डु रोग से पीडित तपस्वी ने कहा—"मुझे आग की जरूरत है।" उसने उसे छुरी-कुल्हाडी दी। यह छुरी-कुल्हाडी ऐसी थी कि जैसा दस्ता डाला जाता, उसके अनुसार छुरी भी बन जाती; कुल्हाडी भी बन जाती। तपस्वी ने पूछा—"मेरे लिए लकडियां कौन लायगा?"

शक्र ने कहा—"भन्ते! जब आपको लकडी की जरूरत हो तो इस कुल्हाडी को हाथ से रगड़ कर कहें; जाओ मेरे लिए लकडियां लाकर आग बना दो। यह लकडियां लाकर आग बना देगी।"

---

२१. दधिवाहन जातक। २.४.१८६

चाहिए, तब जाना चाहिए।"

उसने एक डण्डा तोड़कर उसके सिर पर गिराया। सूअर जागा। कांपते शरीर से मणि को खोजता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा। वृक्ष पर बैठा हुआ आदमी हँसा। सूअर ने उसे देखा तो वृक्ष से सिर दे मारा और वहीं मर गया।

उस आदमी ने उतरकर आग सुलगाई और उसका मांस पकाकर खाया। फिर आकाश में उड़कर हिमालय की ओर चला। हिमालय में स्थित उस ज्येष्ठ तपस्वी के आश्रम को देखकर उतरा। दो-तीन दिन रहकर तपस्वी की सेवा की। वहां उसने छुरी-कुल्हाड़ी की महिमा देखी। उसने उसे लेना चाहा। तपस्वी को मणिखण्ड की महिमा बताकर कहा—"भन्ते! यह मणिखण्ड लेकर मुझे यह छुरी-कुल्हाड़ी दें।" आकाश में घूमने की इच्छा से उस तपस्वी ने मणिखण्ड लेकर छुरी-कुल्हाड़ी दे दी।

उस आदमी ने थोड़ी दूर जाकर छुरी-कुल्हाड़ी को हाथ से रगड़कर कहा—"छुरी-कुल्हाड़ी! तपस्वी के सिर को काटकर मेरा मणिखण्ड ले आ।" छुरी-कुल्हाड़ी ने तपस्वी का सिर काटकर मणिखण्ड ला दिया।

छुरी-कुल्हाड़ी को एक जगह छिपाकर वह मझले तपस्वी के पास पहुंचा। कुछ दिन रहकर ढोल की महिमा देखी। मणिखण्ड देकर उससे भेरी ली। पूर्वोक्त प्रकार से उसका भी सिर कटवाकर छोटे तपस्वी के पास पहुंचा। दही की महिमा देखकर पूर्वोक्त प्रकार से उसका भी सिर कटवाकर दही ले लिया। मणिखण्ड, छुरी-कुल्हाड़ी, ढोल तथा दही का घड़ा लेकर आकाश-मार्ग से वाराणसी पहुँचा। वाराणसी-राजा के पास एक पत्र भेजा—युद्ध करें अथवा राज्य दें।

सन्देश सुनते ही विद्रोही को पकड़ने के लिए राजा निकल पड़ा। आदमी ने ढोल के एक तल को बजाया। चारों प्रकार की सेना पहुँच गई। इधर उसने देखा कि राजा ने अपनी सेना पंक्ति-बद्ध कर ली है। दही के घड़े को छोड़ा। बड़ी भारी नदी बह निकली। जन-समूह दही में डूब गया और निकल न सका।

ने आज्ञा दी—"जा, हमारे माली के साथ रह।"

उस दिन से वह दो जने बाग को संभालने लगे। नए माली ने अकाल फूल फुलाकर, अकाल फल लगाकर उद्यान को रमणीय बना दिया।

राजा ने उस पर प्रसन्न होकर पुराने माली को निकाल दिया। उसने उद्यान को अपने हाथ में जानकर आम के वृक्ष के चारों ओर नीम और कड़वी लताएं लगा दीं। क्रम से नीम के वृक्ष बढे। जड़ों से जड़ें तथा शाखाओं से शाखाएं इकट्ठी हो एक दूसरे में मिल गईं। उनके अमधुर रस के संसर्ग से वैसा मधुर फलवाला आम कड़ुवा हो गया। यह देखकर कि आम के फल कड़ुवे हो गए, माली भाग गया। दधिवाहन ने उद्यान में जाकर आम खाया। मुंह में डाला हुआ आम उसे नीम की तरह कसैला लगा। उसे न सह सकने के कारण खँखारकर थूक दिया।

उस समय बोधिसत्त्व उसके अर्थधर्मानुशासक थे। राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर पूछा—

"पण्डित! इस वृक्ष की जो सेवा पहले होती थी, वह अब भी होती है। ऐसा होने पर भी इसका फल कड़ुवा हो गया। क्या कारण है?"

बोधिसत्त्व ने कहा—

"हे दधिवाहन! तेरा आम्र-वृक्ष नीम से घिरा है। उसकी जड़ जड़ से तथा शाखाएं शाखाओं से सटी हैं। कड़ुवे के साथ होने से आम का फल कड़ुवा हो गया।"

राजा ने उसकी बात सुनकर सभी नीम तथा कड़ुवी लताओं की जड़ें उखड़वा दीं। चारों ओर से अमधुर बालू हटवाकर मधुर बालू डलवाया। दुग्ध-जल, शक्कर-जल तथा सुगन्धि-जल से आम की सेवा कराई। मधुर रस के संसर्ग से वह फिर मधुर हो गया।

राजा ने पहले माली को उद्यान सौंप दिया।

"भद्रे ! पानी नहीं है।"

लेकिन बार-बार मांगने पर बोधिसत्व ने अपनी दाहिनी जांघ में प्रहार कर कहा—"भद्रे ! पानी नहीं है। यह मेरी जांघ का लहू पी लो।" उसने वैसा ही किया।

वे क्रम से महानदी पर आए। पानी पी, स्नान कर, फल-मूल खाकर विश्राम किया। फिर गंगा की मोड़ की जगह पर आश्रम बनाकर रहने लगे।

गंगा के ऊपर के हिस्से में किसी राज्यापराधी चोर को हाथ-पांव तथा नाक काटकर बोरे में बन्द कर गंगा में बहा दिया गया था। वह बहुत चिल्लाता हुआ उस जगह आ निकला। बोधिसत्व ने उसकी करुणापूर्ण रोने-पीटने की आवाज सुनकर सोचा—"मेरे रहते कोई दुःख-प्राप्त प्राणी नष्ट न हो।" उसे आश्रम पर लाकर वस्त्र से जखमों को धोकर चिकित्सा की। उसकी भार्या घृणा से उस पर थूकती हुई फिरती थी—इस प्रकार के लुन्जे को गंगा से लाकर उसकी सेवा करते हैं !

जखम ठीक होने पर उसे और अपनी भार्या को आश्रम पर छोड़कर बोधिसत्व जंगल से फल-मूल लाकर उनका पालन करने लगे।

उनके इस प्रकार रहते हुए वह स्त्री उस लुन्जे से आकृष्ट हो गई। उसने उसके साथ अनाचार किया। उसने सोचा—"किसी उपाय से बोधिसत्व को मार डालना चाहिए।" बोली—"स्वामी ! मैंने तुम्हारे कन्धे पर बैठे हुए कान्तार से निकलते समय इस पर्वत को देखते हुए मिन्नत मानी थी—"हे पर्वत-निवासी देवता ! यदि मैं और मेरे स्वामी सकुशल निकल जायंगे तो मैं तुम्हारी बलि चढ़ाऊंगी। सो वह देवता, जिसकी मिन्नत मानी थी, तंग करता है। उसकी बलि दें।"

बोधिसत्व उसकी माया नहीं जानते थे। उन्होंने "अच्छा" कह स्वीकार किया और बलि-कर्म तैयार कर उससे बलि-पात्र उठवा पर्वत पर चढ़े।

उस स्त्री ने बोधिसत्व से कहा—"स्वामी ! देवता से भी बढ़कर तुम ही उत्तम देवता हो। इसलिए पहले तुम्हें ही वन-पुष्पों से पूज, प्रदक्षिणा कर वन्दना करूंगी। पीछे देवता को बलि दूंगी।" उसने बोधिसत्व को

इसमें बिठाकर ले जा। वह अनाचारिणी उस लुन्जे को बेंत की टोकरी में बिठाकर वाराणसी पहुंची। वहाँ दानशालाओं में खाती हुई घूमने लगी।

बोधिसत्त्व अलंकृत हाथी पर बैठकर दानशाला में जाते। वहां आठ-दस को अपने हाथ से दान देते। वह स्त्री उस लुन्जे को टोकरी में सिर पर उठाए राजा के रास्ते में खड़ी हुई। राजा ने देखकर पूछा—"यह क्या है?"

"देव! एक पतिव्रता है।"

राजा ने उसे बुलाकर, पहचानकर, लुन्जे को टोकरी से निकलवाया।

"यह तेरा क्या लगता है?"

"देव! यह मेरी बुआ का लड़का है। कुलवालों ने मुझे इसे सौंपा है। यह मेरा स्वामी है।"

लोग उनके बीच के भेद को न जानते थे। वे उसकी प्रशंसा करने लगे—"ओह! पतिदेवता!"

राजा ने फिर उससे पूछा—"तुझे कुलवालों ने इसे सौंपा है? यह तेरा स्वामी है?"

उसने राजा को न पहचानते हुए वीर बनकर कहा—"देव! हां।"

तब राजा ने पूछा—"क्या यह वाराणसी-राजा का पुत्र है? क्या तू अमुक राजा की अमुक नाम की लड़की और पदुमकुमार की भार्या नहीं है? मेरी जांघ का लहू पीकर इस लुन्जे के प्रति आसक्त हो मुझे प्रपात से गिरा दिया। वही तू, अब अपने सिर पर मृत्यु लेकर मुझे मरा समझ यहां आई है? मैं जीता हूं।"

"अमात्यो! क्या मैंने तुम लोगों के पूछने पर यह नहीं कहा था कि मेरे छः छोटे भाइयों ने छः स्त्रियों को मारकर मांस खाया। लेकिन मैंने अपनी स्त्री को सकुशल गंगा-किनारे लाकर एक आश्रम में रहते हुए एक दण्ड-प्राप्त लुन्जे को पानी से निकाल सेवा की। उस स्त्री ने उस आदमी के प्रति आसक्त हो मुझे पर्वत से गिरा दिया। यह वही दोनों हैं। जाओ,

पोतली नगरवासी एक ब्राह्मण माणवक उद्यान में गया। बोधिसत्व को देखकर प्रणाम किया। बोधिसत्व ने उससे बातचीत कर पूछा—"माणवक! क्या राजा धार्मिक है?"

"भन्ते! हां, राजा धार्मिक है। लेकिन उसकी भार्या मर गई है। वह उसके शरीर को द्रोणी में रखवाकर रोता-पीटता लेटा है। आज उसे सातवां दिन हो गया। आप राजा को इस प्रकार के दुःख से क्यों नहीं मुक्त करते? आप जैसे शीलवान् के रहते क्या यह ठीक है कि राजा इस प्रकार का दुःख अनुभव करे?"

"माणवक! मैं राजा को नहीं जानता। लेकिन यदि वह आकर मुझसे पूछे तो मैं उसकी भार्या के जन्म-ग्रहण करने का स्थान बताकर, राजा की उससे बातचीत करवाऊं।"

"भन्ते! तो मैं जबतक राजा को लेकर यहां आऊं तबतक आप यहीं बैठें।"

माणवक बोधिसत्व से वचन ले राजा के पास गया। सारी बात सुना कर कहा—"उस दिव्य चक्षुधारी के पास चलना चाहिए।"

राजा यह सोचकर सन्तुष्ट हो रथ पर चढ़कर वहां गया कि उब्बरी को देख सकेगा। बोधिसत्व को प्रणाम कर उसने पूछा—"क्या तुम सचमुच देवी के जन्म-ग्रहण करने की जगह जानते हो?"

"महाराज! हां।"

"वह कहां पैदा हुई है?"

"महाराज! रूप में मत्त होने के कारण प्रमादवश उसने कोई अच्छा काम नहीं किया। इसलिए वह इसी उद्यान में गोबर के कीड़े की योनि में पैदा हुई।"

"मैं विश्वास नहीं करता।"

"तो तुझे दिखाकर उससे वार्तालाप करवाता हूं।"

"अच्छा, करवाएं।"

बोधिसत्व ने अपने प्रताप से ऐसा किया कि दो गोबर-पिण्ड लुढ़कते

मोड़ पर जंगल में रहते थे।

उस समय गंगा में एक मगरमच्छ रहता था। उसकी भार्या ने बोधिसत्व को देखा। उसके मन में उसका मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसने मगरमच्छ से कहा—"स्वामी! इस कपिराज का कलेजा खाना चाहती हूं।"

"भद्रे! हम जलचर, वह स्थलचर; क्या हम उसे पकड़ सकेंगे?"

"जिस किसी भी तरह हो, पकड़ो। यदि नहीं मिला तो मैं मर जाऊंगी।"

"तो डर मत, एक उपाय है। मैं तुझे उसका कलेजा खिलाऊंगा।"

उसे आश्वासन देकर मगरमच्छ, जिस समय बोधिसत्व गंगा का पानी पीकर गंगा-तट पर बैठा था, उसके पास गया और बोला—"वानर-राज! इन अस्वादिष्ट फलों को खाते हुए तू अभ्यस्त स्थान में ही चरता है। गंगा पार आम, कटहल के मधुर फल-वृक्षों की सीमा नहीं। क्या तुझे गंगा पार जाकर फल-मूल नहीं खाने चाहिएं?"

"मगरराज! गंगा में पानी बहुत है। वह विस्तृत है। मैं उधर कैसे जाऊं?"

"यदि चले तो मैं तुझे अपनी पीठ पर चढ़ाकर ले जाऊंगा।"

उसने उसका विश्वास कर "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। "तो आ, मेरी पीठ पर चढ़"—मगरमच्छ ने कहा। बन्दर उसकी पीठ पर चढ़ गया! थोड़ी दूर जा मगरमच्छ उसे डुबाने लगा।

"दोस्त यह क्या, मुझे पानी में डुबा रहा है?"

"मैं तुझे धर्म-भाव से नहीं ले जा रहा हूं। मेरी भार्या के मन में तेरे कलेजे के लिए दोहद उत्पन्न हुआ है। मैं उसे तेरा कलेजा खिलाना चाहता हूं।"

"दोस्त! तूने अच्छा किया, कह दिया। यदि कलेजा हमारे पेट में हो तो एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमते हुए चूर्ण-विचूर्ण हो जायं।"

"तो तुम कलेजा कहां रखते हो?"

उसने पास ही फलों से लदा हुआ एक गूलर का पेड़ दिखाकर कहा—

"तात ! जो होना है सो हो। मैं राजा से नहीं माँग सकता। लेकिन मैं आपको बोलने का अभ्यास करा दूँगा।"

"तात ! अच्छा। मुझे अभ्यास करा।"

बोधिसत्व उसे ऐसे श्मशान में ले गए, जहाँ बीरण घास के झुण्ड थे। वहां घास के पूले बाँधकर 'यह राजा है', 'यह उपराजा है', 'यह सेनापति है', आदि नाम रखकर पिता को दिखाकर कहा—"तात ! अब राजा के पास जाकर 'राजा की जय हो' कहें। तब यह गाथा कहकर बैल माँगें।"

द्वे मे गोणा महाराज येहि खेत्तं कसामसे।
तेसु एको मतो देव, दुतियं देहि खत्तिय॥

(महाराज ! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी। देव ! उनमें से एक मर गया। हे क्षत्रिय ! दूसरा दें।)

ब्राह्मण ने एक वर्ष में गाथा का अभ्यास कर बोधिसत्व से कहा—"तात सोमदत्त ! मुझे गाथा कहने का अभ्यास हो गया। अब मैं इसे चाहे जिस के सामने कह सकता हूं। मुझे राजा के पास ले चल।"

उसने कहा "तात ! अच्छा" और योग्य भेंट लिवा राजा के पास गया। ब्राह्मण ने "महाराज की जय हो" कहकर भेंट की। राजा ने पूछा—"सोमदत्त ! यह ब्राह्मण तेरा क्या लगता है ?"

"महाराज ! मेरा पिता है।"

"किस मतलब से आया है ?"

उसी समय ब्राह्मण ने बैल माँगने के लिए याद की हुई गाथा कही—

द्वे मे गोणा महाराज येहि खेत्तं कसामसे।
तेसु एको मतो देव दुतियं गण्ह खत्तिय॥

(महाराज ! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी। देव ! उनमें से एक मर गया। हे क्षत्रिय ! दूसरा लें।)

राजा ब्राह्मण से विमुख हो गया। उसके कहने का भाव जानकर मुसकराया और बोला—"सोमदत्त ! मालूम होता है, तुम्हारे घर में बहुत बैल हैं।"

"मित्र ! कुछ भी हो, असम्भव होने पर भी मैं क्या करूं ? तेरे पुत्र को चिड़िया ही ले गई है ।"

"अरे मनुष्यघातक, दुष्ट, चोर ! अभी अदालत में जाकर निकलवाता हूं ।"

"जो तुझे अच्छा लगे, कर ।"

कुटिल व्यापारी ने अदालत में पहुंचकर बोधिसत्व से निवेदन किया— "स्वामी ! यह मेरे पुत्र को लेकर नहाने गया । लौटने पर मैंने पूछा कि मेरा पुत्र कहां है ? उस पर यह कहता है कि उसे चिड़िया ले गई । इस मुकद्मे का फैसला करें ।"

बोधिसत्व ने दूसरे से पूछा—"क्या यह सच है ?"

"स्वामी ! मैं इसके लडके को ले गया, यह सच है और चिड़िया उसे ले गई, यह भी सच है ।"

"क्या चिड़ियां बच्चों को ले जाती हैं ?"

"स्वामी ! मैं भी आपसे पूछना चाहता हूं कि चिड़ियां तो बच्चों को आकाश में लेकर नहीं उड़ सकतीं तो क्या चूहे लोहे के फाल खा सकते हैं ?"

"इसका क्या मतलब ?"

"स्वामी ! मैंने इसके घर में पांच सौ फाल रखे । यह कहता है कि तेरे फालों को चूहे खा गए और उनकी जगह मेंगनी दिखलाता है । स्वामी ! यदि चूहे फाल खाते हैं तो चिड़ियां भी बच्चे ले जाती हैं ।"

बोधिसत्व समझ गए कि इसने शठ के प्रति शठता का बर्ताव किया है । बोले—"तुम ठीक कहते हो । यदि चूहे फाल खा जायंगे तो चिड़िया बच्चे को क्यों नहीं ले जायगी ? अरे पुत्र-नष्ट ! जिसकी फाल खोई है, उसकी फाल दे यदि तू अपने बच्चे को चाहता है ।"

"स्वामी ! मैं इसको फाल देता हूँ यदि यह मेरा पुत्र दे ।"

"स्वामी ! मैं देता हूँ यदि यह मेरे फाल दे ।"

इस प्रकार जिसका पुत्र खोया था, उसने पुत्र पाया । जिसकी फाल खोई थी, उसने फाल पाई ।

खरीदा जाता है। वह सब जनों को कष्ट देता है।"

यह सुन सभी बन्दरों ने दोनों हाथों से अपने कान ज़ोर से बन्द कर लिये और कहा—"मत कहें, मत कहें। न सुनने योग्य बात हमने सुनी! इस स्थान पर हमने अनुचित बात सुनी, इसलिए इस स्थान को छोड़ देना चाहिए।" वे उस स्थान की निन्दा कर अन्यत्र चले गये। उस पाषाण-शिला का नाम निन्दित पाषाण-शिला हो गया।

: ३८ :

धम्मद्धु

पूर्व काल में वाराणसी में पायासपाणि नाम का राजा राज्य करता था। कालक नामका उसका सेनापति था। बोधिसत्व पुरोहित थे। नाम था धम्म-ध्वज। राजा के सिर को अलंकृत करनेवाले नाई का नाम था छत्तपाणि[१]

राजा धर्मपूर्वक राज्य करता था; किन्तु उसका सेनापति मुकदमों का फैसला करता हुआ रिश्वत खाता था। घूस-खोर घूस लेकर स्वामी को अस्वामी बना देता था।

एक दिन एक आदमी मुकदमे में हार गया। अदालत से निकलकर जिस समय रोता-पीटता बाहर जा रहा था, उसने बोधिसत्व को देखा। बोधि-सत्व के पाँव पर गिरकर कहा—"स्वामी! तुम्हारे सदृश राज-पुरोहित के अर्थधर्मानुशासक होते हुए कालक सेनापति रिश्वत लेकर अस्वामी को स्वामी बना देता है।"

बोधिसत्व के हृदय में करुणा उत्पन्न हो गई। "आ, तेरे मुकदमे का फैसला करूंगा", कहते हुए उसे लेकर मुकदमे की जगह गये। जन-समूह इकट्ठा हो गया। बोधिसत्व ने उस फैसले को उलटते हुए, फिर स्वामी

३८. धम्मद्ध जातक। २.७.२२०

तया उद्यान दो साल में फल देता है। आप उसे बुलाकर कहें कि हमें कल ही उद्यान तैयार चाहिए। कल हम उसमें खेलेंगे। वह न बना सकेगा। तब उसे इस अपराध के कारण मार देंगे।"

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा—"पण्डित! पुराने उद्यान में हम बहुत खेले। अब नये उद्यान में क्रीड़ा करने की इच्छा है। कल क्रीड़ा करेंगे। हमारे लिए उद्यान बनाओ। यदि न बना सकोगे तो तुम्हारी जान नहीं बचेगी।"

बोधिसत्व समझ गये कि कालक को रिश्वत न मिलने के कारण उसने राजा को फोड़ा होगा। "महाराज! कर सका तो देखूंगा" कहकर वे घर चले गये। प्रणीताहार ग्रहण कर चारपाई पर लेटकर सोचने लगे। शक्र-भवन गरम हो गया। शक्र ने ध्यान लगाकर देखा। बोधिसत्व की पीड़ा जानकर जल्दी से आया। सोने के कमरे में प्रवेश कर आकाश में खड़े होकर पूछा—

"पण्डित! क्या चिन्ता कर रहे हो?"

"तू कौन है?"

"मैं शक्र हूँ।"

"राजाने मुझे उद्यान बनाने को कहा है। उसकी चिन्ता कर रहा हूँ।"

"पण्डित! चिन्ता न कर। मैं तेरे लिए नन्दनवन चित्रलतावन-सदृश उद्यान बना दूंगा। किस जगह पर बनाऊं?"

"अमुक स्थान पर।"

उद्यान बनाकर शक्र देवपुर चला गया। बोधिसत्व ने अगले दिन राजा से जाकर निवेदन किया।

राजा ने जाकर देखा, अठारह हाथ की मनोशिलावर्ण की दीवार से घिरा, द्वार-अट्टालिका-सहित, फूल-फल के भार से लदा हुआ, नाना प्रकार के वृक्षों से सजा हुआ उद्यान है। उसने कालक से पूछा—"पण्डित ने हमारा कहना किया। अब क्या करें?"

"महाराज! जो एक रात में उद्यान बना सकता है, वह राज्य ले स ता

लिए उसे कहें कि मुझे चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल बनाकर दे।"

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा—"आचार्य! तुमने हमारे लिए उद्यान, पुष्करिणी, हाथी दांत का प्रासाद, उसमें प्रकाश करने के लिए मणि-रत्न बनाया। अब मेरे उद्यान की रक्षा करनेवाला, चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल बनाओ। नहीं बनाओगे तो तुम्हारी जान न बचेगी।"

"मिलने पर देखूंगा" कहकर बोधिसत्व घर गए। प्रणीत भोजन खा, शय्या पर सोकर सवेरे उठ सोचने लगे—देवराज शक्र ने जो स्वयं बना सकता था, बनाया। वह चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल नहीं बना सकता। इसलिए दूसरों के हाथ से मरने की अपेक्षा जंगल में अनाथ की तरह मरना ही अच्छा है।

वह बिना किसीसे कहे, प्रासाद से उतर, मुख्यद्वार से ही नगर से निकल, जंगल में प्रवेश कर, एक वृक्ष के नीचे बैठ, सत्पुरुषों के धर्म का ध्यान करने लगा। शक्र को जब यह पता लगा तो उसने एक वनचर की शक्ल बना बोधिसत्व के पास जाकर पूछा—"ब्राह्मण! तू सुकुमार है। तूने पहले दुःख नहीं देखा। तू इस अरण्य में दाखिल होकर बैठा क्या कर रहा है?"

"राजा चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल मँगवाता है। वैसा नहीं मिल सकता। सो मैंने यह सोचा कि किसीके हाथ से मरने से क्या लाभ, जंगल में प्रविष्ट हो अनाथ की तरह मरूंगा। इसलिए श्रेष्ठ पुरुषों के धर्म का मरण करता हुआ ध्यान लगा रहा हूं।"

"ब्राह्मण! मैं देवराज शक्र हूं। मैंने तेरे लिए उद्यान आदि बनाये। चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल नहीं बना सकता। तुम्हारे राजा के बालों को सजानेवाला छत्तपाणि नाम का नाई है। चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल की आवश्यकता हो तो उसे उद्यानपाल बनाने के लिए कहना।"

इतना कहकर शक्र देवनगर चला गया। बोधिसत्व प्रातःकाल का भोजन कर राजद्वार गये। वहीं छत्तपाणि को देख, हाथ से पकड़कर पूछा—"मित्र! तू चारों अंगों से युक्त है?"

"तुझे किसने कहा कि मैं चारों अंगों से युक्त हूं?"

"तात ! मेरा पुत्र राजा को अत्यन्त प्रिय है। पुत्र को देखकर राजा उसे चूमता हुआ लाड़-प्यार करता हुआ अपना अस्तित्व ही भूल जाता है। मैं पुत्र को सजाकर राजा की गोद में बिठा दूंगी। जब वह पुत्र के साथ खेल रहा हो तब तुम भोजन लाना।"

रसोइया निर्दिष्ट समय पर भोजन लाया। शराब के नशे में बेहोश राजा ने पका मांस न देखकर पूछा—"मांस कहां है?" "देव ! आज पशु-हत्या बन्द रहने से मांस नहीं मिला।"

"मुझे मांस नहीं मिलेगा। ले, जल्दी से पकाकर ला", कहते हुए राजा ने गोद में बैठे प्रिय पुत्र की गर्दन मरोड़कर रसोइये के सामने फेंकी। रसोइये ने वैसा किया। राजा ने पुत्र-मांस के साथ भोजन किया। राजा के भय से न कोई रो-पीट सका, न कुछ कह ही सका।

प्रातःकाल नशा उतरने पर राजा ने कहा—"मेरे पुत्र को लाओ।" उस समय देवी रोती हुई चरणों पर गिर पड़ी। राजा ने पूछा—"भद्रे ! क्या हुआ ?"

"देव ! कल आपने पुत्र को मारकर पुत्र-मांस के साथ भोजन किया !"

तब से मैंने प्रतिज्ञा की कि ऐसी विनाशकारिणी सुरा को कभी नहीं पीऊंगा।"

"क्या देखकर तू स्नेह-हीन हो गया ?"

"महाराज ! पहले मैं वाराणसी में कितवास नाम का राजा था। मुझे पुत्र हुआ। लक्षण जाननेवालों ने उसे देखकर कहा कि इसकी मृत्यु पानी न मिलने से होगी। उसका नाम दुष्टकुमार रखा गया।

राजा दुष्टकुमार को सदैव अपने आगे-पीछे रखता। पानी के अभाव में कुमार मर न जाय, इस भय से चारों दरवाजों और नगर के भीतर जहां-तहां पुष्करिणियां बनवा दीं। चौरस्तों आदि पर मण्डप बनवा, पानी की चाटियां रखवाईं।

एक दिन कुमार सज-धजकर अकेले उद्यान गया। रास्ते में उसने प्रत्येक-बुद्ध को देखा। जनता उन्हींको प्रणाम करती, हाथ जोड़ती थी; राजकुमार

पांव पकड़कर, राजमहल से उतारकर, जो-जो हाथ में आया—पत्थर, मुद्गर आदि से प्रहार करके उसे मार डाला।

: ३९ :

भात की पोटली

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्त्व अमात्य-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर उसके अर्थधर्मानुशासक हुए।

राजा ने अपने पुत्र पर षड्यन्त्र का सन्देह कर उसे निकाल दिया। वह अपनी भार्या-सहित नगर से निकल काशी के एक गामड़े में रहने लगा।

आगे चलकर जब उसने पिता के मरने का समाचार सुना तो कुलागत राज्य को लेने के लिए वापिस बनारस आया। रास्ते में उन दोनों को खाने के लिए भात की पोटली मिली। उसने भार्या को न देकर भात अकेले खाया। उसकी इस प्रकार की कठोर-हृदयता देख भार्या बड़ी दुःखी हुई।

वाराणसी पहुंचकर वह राजा बना। भार्या को पटरानी बनाकर उसे बहुत थोड़ी-सी सुविधा दी कि इतना इसे पर्याप्त होगा। उसका और कुछ भी सम्मान न करता। "कैसे दिन कटते हैं"—तक न पूछता। बोधिसत्व ने सोचा—"यह देवी राजा का बहुत उपकार करनेवाली है, उसके प्रति स्नेह रखती है; लेकिन राजा इसे कुछ नहीं मानता। इसका सत्कार-सम्मान करवाऊंगा।"

बोधिसत्त्व देवी के पास जाकर आदरपूर्वक एक ओर खड़े हो गये। देवी ने पूछा—"तात! क्या है?"

"देवी! हम तुम्हारी सेवा करते हैं। क्या बड़े-बूढ़ों को वस्त्र-खण्ड या भात नहीं देना चाहिए?"

---

२९. पुटभत्त जातक। २.८.२२३

: ४० :

मरे राजा से भी भय

पूर्व समय में वाराणसी में महापिंगल नाम का राजा अधर्म से अनुचित तौर पर राज्य करता था। लोभ के वशीभूत हो पापकर्म करता था। जनता को ऐसे पीड़ता था, जैसे ऊख-यन्त्र ऊख को। वह रौद्र स्वभाव का था। कठोर था और दुस्साहसी था। उसमें दूसरों के लिए तनिक भी दया नहीं थी। घर में स्त्रियों का, लड़के-लड़कियों का, अमात्य-ब्राह्मणों का तथा गृहपति आदि का भी अप्रिय था। वह ऐसा था मानो आँख में धूल हो, भात के कौर में कंकर हो अथवा एड़ी को बींधकर कांटा घुस गया हो।"

उस समय बोधिसत्व महापिंगल के पुत्र होकर पैदा हुए। महापिंगल चिर-काल तक राज्य करके मर गया। उसके मरने पर सभी वाराणसी-वासी हर्षित और सन्तुष्ट हुए। खूब प्रसन्न हो, एक हजार गाड़ी लकड़ी से महापिंगल को जलाकर अनेक सहस्र घड़ों से आग बुझाई। फिर बोधिसत्व को राज्य पर अभिषिक्त किया। "हमें धार्मिक राजा मिला है" सोचकर लोगों ने नगर में उत्सव-भेरी बजवाई, ऊंची ध्वजाओं तथा पताकाओं से नगर को अलंकृत किया, दरवाजे-दरवाजे पर मण्डप बनवाये, खील-पुष्प बिखेर सजे हुए मण्डपों में बैठकर खाने-पीने लगे।

बोधिसत्व अलंकृत महातल पर बिछे श्रेष्ठ आसन पर, जिस पर श्वेत छत्र छाया हुआ था, बैठे। अमात्य, ब्राह्मण, गृहपति, राष्ट्रिक तथा द्वारपाल आदि राजा को घेरकर खड़े थे। एक द्वारपाल थोड़ी ही दूर पर हिचकियां लेता हुआ रो रहा था। बोधिसत्व ने उसे देखकर पूछा—"सौम्य! मेरे पिता के मरने पर सभी प्रसन्न हो उत्सव मना रहे हैं। लेकिन तू खड़ा रो रहा है। क्या मेरा पिता तुझे ही प्रिय था?"

"मैं इस शोक से नहीं रोता हूं कि महापिंगल मर गया। मेरे सिर को

४०. महापिंगल जातक। २.६.२४०

बुलाकर अपना गन्धर्व बनाया। मूसिल ने वीणा को स्वर चढ़ाकर बजाया। गुत्तिल गन्धर्व के परिचित उन लोगों को मूसिल का बजाना चटाई खुजलाने जैसा प्रतीत हुआ। कोई भी कुछ न बोला। उन्होंने अपनी प्रसन्नता न प्रकट की। मूसिल ने उनकी प्रसन्नता न देखी तो सोचा—"मालूम होता है, मैं बहुत तीखा बजाता हूँ।" उसने मध्यम स्वर चढ़ा मध्यम स्वर बजाया। वे तब भी उपेक्षावान ही रहे। उसने सोचा—"मालूम होता है, ये कुछ नहीं जानते।" स्वयं भी कुछ न जाननेवाला बन उसने वीणा के तारों को ढीला कर बजाया। उन्होंने तब भी कुछ न कहा।

मूसिल बोला—"भो व्यापारियो! क्या आप लोग मेरे वीणा-वादन से प्रसन्न नहीं होते?"

"क्या तू वीणा बजाता था? हम तो समझते रहे कि तू वीणा को कस रहा है।"

"क्या तुम मुझसे बढ़कर आचार्य को जानते हो? अथवा अपने अज्ञान के कारण प्रसन्न नहीं होते हो?"

"वाराणसी में जिन्होंने गुत्तिल गन्धर्व का वीणा-वादन सुना है, उन्हें तुम्हारा वीणा बजाना ऐसा ही लगता है, जैसे स्त्रियाँ बच्चों को सन्तुष्ट कर रही हों।"

"अच्छा, तो आपने जो खर्चा दिया है उसे वापिस लें। मुझे यह नहीं चाहिए। लेकिन हाँ, वाराणसी जाते समय मुझे साथ लेकर जायें।"

उन्होंने "अच्छा" कह स्वीकार किया। जाते समय उसे साथ वाराणसी ले गये। वहां गुत्तिल का निवास-स्थान बताकर वे अपने-अपने घर चले गये।

मूसिल ने बोधिसत्त्व के घर में प्रवेश किया। वहां टंगी हुई बोधिसत्व की बहुत ही अच्छी वीणा देखकर बजाई। बोधिसत्व के माता-पिता अन्धे थे। बोधिसत्व उन्हींकी सेवा करते हुए अकेले जीवन व्यतीत करते थे। अन्धे होने के कारण बोधिसत्व के माता-पिता मूसिल को न देख सके। उन्होंने समझा, चूहे वीणा खा रहे हैं। इसलिए उन्होंने कहा—"सू...सू... चूहे वीणा खा रहे हैं।"

आधा मिलेगा।" उन्होंने मूसिल को वह बात कही। मूसिल बोला—"मुझे आपके बराबर ही मिलेगा तो सेवा करूंगा, नहीं मिलेगा तो नहीं।"

"क्यों?"

"क्या आप जितना शिल्प जानते हैं, वह सब मैं नहीं जानता?"

"हां, जानते हो।"

"यदि ऐसा है तो मुझे आधा क्यों देता है?"

बोधिसत्व ने राजा से कहा। राजा बोला—"यदि आपके समानशिल्प दिखा सकेगा तो बराबर मिलेगा।" बोधिसत्व ने राजा की बात उसे सुनाई। वह बोला—"अच्छा, दिखाऊंगा।" राजा को कहा गया। उसने कहा—"दिखाओ।" सातवें दिन मुकाबला होना निश्चित हुआ।

राजा ने मूसिल को बुलवाकर पूछा—"क्या तू सचमुच आचार्य के साथ मुकाबला करेगा?"

"देव! सचमुच।"

"आचार्य के साथ मुकाबला करना उचित नहीं। मत कर।"

"महाराज! आज से सातवें दिन मेरा और आचार्य का मुकाबला होने ही दें। आप एक दूसरे के ज्ञान को देखेंगे।"

राजा ने 'अच्छा' कहकर स्वीकार किया। उसने शहर में मुनादी करवा दी—"आज से सातवें दिन आचार्य गुत्तिल तथा उनका शिष्य मूसिल राज-दरबार में एक-दूसरे के मुकाबले में अपना-अपना शिल्प दिखायेंगे। नगर-निवासी इकट्ठे होकर शिल्प देखें।"

बोधिसत्व सोचने लगे—"यह मूसिल आयु में कम है, जवान है। मैं बूढ़ा हो गया हूं। शक्ति घट गई है। बूढ़े आदमी से काम नहीं हो सकता। शिष्य हार गया तो इसमें मेरी कुछ विशेषता नहीं. लेकिन शिष्य जीत गया तो उस लज्जा से तो अच्छा है जंगल में जाकर मर जाना।"

वह जंगल में जाते, लेकिन मृत्यु-भय से लौट आते। फिर लज्जा के मारे जंगल में जाते। इस प्रकार उन्हें आना-जाना करते ही छः दिन बीत गए। तृण मर गए। उन पर रास्ता चलने का निशान बन गया। उस समय

पर वीणा लेकर बैठे। शक्र गुप्त रूप से आकाश में आकर ठहरा। केवल बोधिसत्व ही उसे देख सकते थे। मूसिल भी आकर अपने आसन पर बैठा। जनता घेरकर खड़ी हुई। आरम्भ में दोनों ने बराबर-बराबर बजाया। जनता ने दोनों के बजाने से संतुष्ट होकर हजारों हर्ष-नाद किये।

शक्र ने आकाश में ठहरे ही बोधिसत्व को कहा—"एक तार तोड़ दें।" बोधिसत्व ने भ्रमर तार तोड़ दिया। उसके टूटने पर भी वीणा स्वर देती थी। देव-गन्धर्व का सा स्वर निकलता था। मूसिल ने भी तार तोड़ दिया। उसमें से स्वर न निकला। आचार्य ने दूसरा-तीसरा करके सातों तार तोड़ दिये। केवल दण्ड को बजाने से जो स्वर निकला, उसने सारे नगर को छा लिया। हजारों वस्त्र फेंके गये तथा हजारों हर्षनाद हुए। बोधिसत्व ने एक गोटी आकाश में फेंकी। तीन सौ अप्सराएं उतरकर नाचने लगीं। इस प्रकार दूसरी और तीसरी गोटी फेंकने पर जैसे कहा गया उसी तरह नौ सौ अप्सराएं उतरकर नाचने लगीं।

उस समय राजा ने जनता को इशारा किया। जनता ने उठकर कहा—"तू आचार्य से विरोध कर उनकी बराबरी करता है। अपनी सामर्थ्य नहीं देखता!"

जनता ने मूसिल को डरा-धमकाकर जो-जो हाथ में आया, पत्थर, डण्डे आदि मारकर उसकी जान ले ली।

: ४२ :

मांगनेवाला अप्रिय होता है

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व महाधनवान कुल में पैदा हुए। जब बालक इधर-उधर दौड़ने योग्य हो गया तब एक दूसरा भी पुण्यवान प्राणी उसकी माता की कोख

४२. मणिकण्ठ जातक ३.१.२५३

में आया। बच्चों के बड़े होने पर माता-पिता मर गये। इनमें इनको वैराग्य प्राप्त हुआ और वे ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुए। दोनों भाई गंगा-तट पर पर्णशाला बनाकर रहने लगे। ज्येष्ठ भाई की पर्णशाला गंगा के ऊपर की तरफ थी, छोटे भाई की नीचे की तरफ।

एक दिन मणिकण्ठ नाम का नागराजा अपने भवन से निकलकर गंगा के किनारे ब्रह्मचारी के रूप में घूमता हुआ छोटे भाई के आश्रम पर पहुँचा। प्रणाम करके एक ओर बैठा। परस्पर कुशल-क्षेम पूछकर वे दोनों धीरे-धीरे एक दूसरे के विश्वासी हो गये। अकेले न रह सकते थे। मणिकण्ठ नित्य तपस्वी के पास आता। बैठकर बातचीत करता। तपस्वी के प्रति स्नेह होने के कारण घर जाते समय अपना रूप छोड़कर फन से तपस्वी को घेरते हुए लिपट जाता। उसके सिर पर बड़ा-सा फन निकालकर थोड़ी देर विश्राम करता, फिर स्नेह त्याग, शरीर को लपेटकर तपस्वी को प्रणाम करता और अपने भवन को चला जाता। तपस्वी उसके भय से कृश हो गया। रूक्ष गया। दुर्वर्ण हो गया। पांडुवर्ण हो गया। धमनियां गात्र से आ लगीं।

वह एक दिन भाई के पास गया। उसने इससे पूछा—"क्या कारण है, तू कृश हो गया है? रूक्ष गया है? दुर्वर्ण हो गया है? पांडुवर्ण हो गया है? धमनियां गात्र से आ लगी हैं?" उसने भाई से यह हाल कहा। भाई ने पूछा—"तू उस नाग का आना पसन्द करता है या नहीं?"

"नहीं।"

"जब वह नागराजा तेरे पास आता है तो क्या गहने पहनकर आता है?"

"मणि-रत्न।"

"तो अगली बार जब नागराजा तेरे पास आवे तो उसके बैठने से पहले ही मांगना—"मुझे मणि दे।" वह नाग तुझे बिना फन से लपेटे ही चला जायगा। दूसरे दिन आश्रम के द्वार पर खड़े ही मांगना। तीसरे दिन गंगा के किनारे खड़े होकर उसके पानी से निकलते ही मांगना। इस प्रकार वह फिर तेरे पास नहीं आयेगा।

तपस्वी ने "अच्छा" कहा और अपनी पर्णकुटी में चला गया। दूसरे दिन नागराजा के आकर खड़े होते ही याचना की—"यह अपने पहनने की मणि मुझे दे।" वह बिना बैठे ही चला गया। दूसरे दिन उसने आश्रम-द्वार पर ही खड़े होकर उसके आते ही मांगा—"कल भी मुझे मणिरत्न नहीं दिया, आज तो मिलना ही चाहिए।" नाग बिना आश्रम में घुसे ही चला गया। तीसरे दिन उसके पानी से निकलते ही कहा—"आज मुझे मांगते-मांगते तीसरा दिन हो गया। आज मुझे यह मणिरत्न दे।" नागराजा ने पानी में खड़े-ही-खड़े कहा—

"इस मणि के कारण मुझे बहुत अन्न-पान की प्राप्ति होती है। तू अति याचक है। जैसे कोई तरुण पत्थर पर तेज की हुई तलवार लेकर किसीको डराये, उसी तरह तू मुझे यह मणि मांगकर त्रास देता है। मैं यह तुझे न दूंगा और मैं तेरे आश्रम में भी नहीं आऊंगा।"

इतना कहकर वह नागराजा पानी में डुबकी मार अपने नाग-भवन चला गया। फिर वापस नहीं आया।

ज्येष्ठ तपस्वी छोटे भाई का हाल-चाल जानने के लिए उसके पास आया। उसने यह सारा वृत्तान्त सुन और छोटे तपस्वी को स्वस्थ, प्रसन्न देखकर कहा—

"जो चीज मालूम हो कि किसीकी प्रिय है, वह उससे न मांगे। अति याचना करनेवाले के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है। सात रत्नों से परिपूर्ण नाग-भवन में रहनेवाले नागों को भी याचना अप्रिय होती है।"

: ४३ :

परोपकार का बदला

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय

---

४३. तिरीटवच्छ जातक। २.१.२५९

कर, तेल मलकर, स्नान करके फल आदि खिलाये, तब हाथी का बन्धन खोला। राजा ने दो-तीन दिन तक विश्राम किया और बोधिसत्व से अपने यहां आने की प्रतिज्ञा कराके चला गया।

बोधिसत्व भी महीने-आधे महीने बाद बाराणसी गये। उद्यान में रह कर दूसरे दिन भिक्षा के लिए घूमते हुए राज-द्वार पर पहुंचे। बड़ी खिड़की खोलकर राजाङ्गण में देखते हुए राजा ने बोधिसत्व को देखा। पहचानकर प्रासाद से उतर, प्रणाम कर, महाप्रासाद पर लाकर, ऊंचे किये हुए श्वेत छत्र के नीचे राजसिंहासन पर बैठाया। अपने लिए बने आहार का भोजन कराया। उद्यान में लाकर उसके लिए चंक्रमणादि से घिरा हुआ निवासस्थान तैयार कराया। प्रव्रजितों की सभी आवश्यक चीजें देकर* उद्यानपाल को सौंपकर प्रणाम करके गया।

तब से बोधिसत्व राज-दरबार में भोजन करने लगे। बहुत आदर-सत्कार हुआ। उस आदर को न सह सकनेवाले अमात्यों ने सोचा—"कोई योद्धा इस प्रकार का सत्कार पाता हुआ क्या नहीं कर सकता?" उन्होंने उपराज के पास जाकर कहा—"देव! हमारा राजा एक तपस्वी से बहुत ममत्व रखता है। उसने उसमें क्या गुण देखे? आप भी राजा के साथ मन्त्रणा करें।" उसने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। अमात्यों के साथ राजा के पास जाकर वह बोला—

"यह कुछ विद्या नहीं जानता। न आपका बन्धु है, न मित्र है। तो किस कारण से हे तिरीटवच्छ! यह त्रिदण्डी श्रेष्ठ भोजन पाता है?"

यह सुनकर राजा ने पुत्र को आमन्त्रित किया—"तात! क्या तुमको याद है कि जब मैं सीमा के बाहर जाकर युद्ध में पराजित होकर दो-तीन दिन तक नहीं आया था?"

"याद है।"

"तो इसीके कारण मुझे जीवन मिला। अपने जीवन-दाता के अपने

---

* तीन चीवर, भिक्षापात्र आदि।

पास आने पर मैं राज्य देकर भी उसका बदला नहीं चुका सकता ।"

तब से लेकर उपराज, अमात्य या और कोई राजा से कुछ न कह सका ।

: ४४ :

पेट का दूत

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था । उस समय बोधिसत्त्व उसका पुत्र होकर पैदा हुआ । आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला जाकर शिल्प सीखा । पिता के मरने पर राजा बना ।

वह भोजन के बारे में बहुत शुद्धाशुद्ध विचार करनेवाला था । इसलिए उसका नाम भोजन-शुद्धिक राजा पड़ा । वह ऐसा भोजन करता था कि उसकी एक थाली का मूल्य एक लाख होता । खाते समय घर के अन्दर बैठकर नहीं खाता था । अपने भोजन-विधान को देखनेवाली जनता को पुण्य देने की इच्छा से वह राज्य-द्वार पर रत्न-मण्डप बनवाकर, भोजन के समय उसे अलंकृत करवा ऊंचे उठे हुए स्वर्णमय श्वेतछत्र के नीचे राज-सिंहासन पर बैठकर क्षत्रिय कन्याओं से घिरा एक लाख की सोने की थाली में नाना प्रकार का भोजन करता ।

एक अति लोभी मनुष्य के मन में उस भोजन के खाने की इच्छा हुई । वह इच्छा को न रोक सकता था । उसे एक उपाय सूझा । उसने वस्त्रों को कसकर पहना । हाथ उठाकर "ओ ! मैं दूत हूं, दूत हूं," चिल्लाता हुआ राजा के पास पहुँचा ।

उस समय उस जनपद में "दूत हूँ" कहनेवाले को कोई नहीं रोकता था । इसलिए जनता ने दो हिस्सों में विभक्त हो उसे रास्ता दे दिया । उसने जल्दी से जाकर झपटकर राजा की थाली में भात का एक कौर लेकर मुँह में डाल लिया । खड्ग-रक्षक ने उसका सिर काटने के लिए तलवार

४४. दूत जातक । २.१.२६०

उठाई। राजा ने मना किया। "मत डरो, भोजन करो।" कहकर राजा ने अपना हाथ खींच लिया और हाथ धोकर बैठा। उसके भोजन कर चुकने पर अपने पीने का पानी तथा पान देकर पूछा—"हे पुरुष! तू अपने को दूत कहता है; तू किसका दूत है?"

"महाराज, मैं तृष्णा का दूत हूँ, पेट का दूत हूँ। तृष्णा ने मुझे आज्ञा देकर दूत बनाकर भेजा है—तू जा।

"मैं उस पेट का दूत हूं जिसके वशीभूत हो लोग अपने शत्रु के यहां भी माँगने जाते हैं। राजन्! मुझ पर क्रोध न करें।"

राजा उसकी बात सुनकर सोचने लगा—"सचमुच प्राणी पेट के दूत हैं, तृष्णा के वशीभूत विचरते हैं। तृष्णा ही प्राणियों को चलाती है। इस व्यक्ति ने ठीक कहा है।" राजा ने इसका जवाब दिया—

"हे ब्राह्मण! तुझे बैलों के साथ हजार लाल गौवें देता हूँ। दूत दूत को कैसे न दे? हम भी उसी तृष्णा के दूत हैं।"

: ४५ :

स्त्री का आकर्षण

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। वह पुत्र-विहीन था। उसने अपनी स्त्रियों को पुत्र-प्रार्थना के लिए कहा। वे पुत्र के लिए प्रार्थना करती थीं। इस प्रकार समय बीतते हुए बोधिसत्त्व ब्रह्मलोक से च्युत होकर पटरानी की कोख में पैदा हुआ। उसे पैदा होते ही नहलाकर स्तन पिलाने के लिए दाई को दिया। वह दूध पिलाये जाने पर रोता था। तब उसे दूसरी को दिया। स्त्रियों के हाथ में वह चुप ही नहीं होता था। तब उसे एक नौकर को सौंपा। उसके हाथ में लेते ही चुप हो गया। तब से उसे पुरुष ही लिये रहते। स्तन पिलाना होता तो दुहकर

---

४५. चुल्लपलोभन जातक। ३.२.२६३

पिलाते अथवा पर्दे की ओट से स्तन मुँह में डालते। वह क्रमशः बड़ा होता गया, किन्तु स्त्रियों को इतना उसने पसन्द नहीं किया। इसलिए राजा ने उसके बैठने-सोने का स्थान अलग बनवाया।

राजकुमार सोलह वर्ष का हुआ। राजा सोचने लगा—"मेरे दूसरा पुत्र नहीं है। यह काम-भोग में रस नहीं लेता। राज्य की भी इच्छा नहीं करता। मुझे पुत्र मुश्किल से मिला है।" तब उसने पुरुषों की परिचर्या कर उनको वश में करनेवाली, नाच, गीत और बजाने में पटु, एक स्त्री को बुलवाकर कहा—

"अगर स्त्री की गन्ध से अपरिचित मेरे कुमार को लुभा सकेगी तो यह राजा होगा और तू पटरानी।"

"देव! इसकी जिम्मेवारी मेरी। आप चिन्ता न करें।"

वह पहरेदारों के पास जाकर बोली—

"मैं प्रातःकाल आकर आर्यपुत्र के शयनगृह से बाहर खड़ी होकर गाऊँगी। अगर वह क्रोधित हो तो मुझसे कहना। मैं चली जाऊँगी। अगर सुने तो मेरी तारीफ करना।"

उन्होंने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। वह प्रातःकाल उस स्थान पर खड़ी होकर, वीणा के स्वर से गीत का स्वर और गीत के स्वर से वीणा का स्वर मिलाकर, मधुर स्वर में गाने लगी। कुमार सुनता हुआ लेटा रहा। दूसरे दिन कुमार ने नजदीक आकर गाने की आज्ञा दी। अगले दिन शयनागार के पास आकर गाने की आज्ञा दी। अगले दिन अपने पास बुलाकर। इस प्रकार क्रमशः तृष्णा उत्पन्न करके, लोकधर्म सेवन करके, वह काम-रस से परिचित हो गया। "स्त्री दूसरे को नहीं दूँगा" कहता हुआ, तलवार लेकर, गली में निकल, पुरुषों के पीछे-पीछे दौड़ने लगा।

राजा ने उसे पकड़वाकर उस स्त्री के साथ नगर से बाहर निकाल दिया। दोनों जंगल में प्रविष्ट हुए। गंगा के नीचे, समुद्र के ऊपर, आश्रम बनाकर रहने लगे। वही पर्णशाला में बैठकर कन्द-मूल आदि पकाती थी। वह हिमवन्त प्रदेश से फल-मूल लाता।

एक दिन जब वह फल-मूल लेने गया तो एक समुद्र-द्वीपवासी तपस्वी भिक्षा के लिए आकाश-मार्ग से जाता हुआ, धुआं देखकर आश्रम पर उतरा। नटी ने उससे कहा कि जबतक पके तबतक बैठो। उसने तपस्वी को बैठाकर स्त्री-हाव-भाव से मोहित कर, ध्यान से च्युत कर, उसका ब्रह्मचर्य अन्तर्धान कर दिया। वह पंख कटे कौवे के समान हो गया। उसे छोड़ कर नहीं जा सकता था। उस दिन वहीं रहा। फिर बोधिसत्व को आता देखकर समुद्र की ओर भागा। बोधिसत्व ने अपना शत्रु समझकर उसका पीछा किया। तपस्वी आकाश में उड़ने का प्रयत्न करता हुआ समुद्र में गिर पड़ा। बोधिसत्व ने सोचा—"यह तपस्वी आकाश-मार्ग से आया होगा। ध्यान के नष्ट होने से समुद्र में गिरा। मुझे अब इसकी सहायता करनी चाहिए।" उसने समुद्र के किनारे खड़े होकर कहा—

"ऋद्धि-बल से आकाश-मार्ग से आकर अब स्त्री के संसर्ग के कारण समुद्र में डूबता है। ठगनेवाली महामाया, ब्रह्मचर्य को प्रकुपित करनेवाली स्त्रियाँ, पुरुष को डुबा देती हैं। जिस पुरुष से यह सम्बन्ध करती हैं, चाहे राग से, चाहे धन-लोभ से, उसे वैसे ही शीघ्र जला देती है, जैसे आग अपने स्थान को। यह जानकर स्त्रियों से दूर रहे।"

इस प्रकार बोधिसत्व के वचन सुनकर तपस्वी समुद्र में खड़े-ही-खड़े फिर ध्यान को प्राप्त कर आकाश से अपने निवासस्थान को गया।

बोधिसत्व ने सोचा—"यह तपस्वी इस प्रकार भारी शरीरवाला है, सो सेमर की रुई के समान आकाश-मार्ग से उड़ गया। मुझे भी इसकी तरह ध्यान उत्पन्न कर आकाश में विचरना चाहिए।" वह आश्रम लौटकर उस स्त्री को बस्ती ले जाकर छोड़ आया—"तू जा।"

स्वयं अरण्य में प्रविष्ट हो, सुन्दर स्थान में आश्रम बना, ऋषि-प्रव्रज्या ले, ध्यान कर, अभिज्ञा तथा समापत्तियां प्राप्त कर ब्रह्मलोक गया।

: ४६ :

बन्दरों के भरोसे बाग

पूर्व समय में वाराणसी में राजा विश्वसेन राज्य करता था। उस समय उत्सव की घोषणा हुई। माली ने सोचा—"उत्सव में शामिल होना चाहिए।" उसने उद्यान में रहनेवाले बन्दरों से कहा—"यह बाग आप लोगों के लिए बहुत उपयोगी है। मैं एक सप्ताह उत्सव मनाऊंगा। सात दिन तक आप रोपे हुए पौधों में पानी दें।" उन्होंने "अच्छा" कह स्वीकार किया। वह उन्हें मशकें देकर चला गया।

बन्दर पानी सींचने लगे। उनके मुखिया ने कहा—"जरा सब्र करो। पानी का हमेशा मिलना कठिन है। उसकी रक्षा होनी चाहिए। पहले पौधों को उखाड़कर उनकी लम्बाई नापनी चाहिए। तब बड़ी जड़ में अधिक पानी और छोटी जड़ में थोड़ा पानी डालना चाहिए।" उन्होंने "अच्छा" कह स्वीकार किया। कुछ बन्दर पौधों को उखाड़ते जाते थे, कुछ उन्हें फिर गाड़कर पानी देते जाते।

उस समय बोधिसत्व वाराणसी के एक कुल में पैदा हुए थे। वह किसी काम से कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन बन्दरों को ऐसा करते देखा। पूछा—

"किसने कहा तुमको ऐसा करने को?"

"मुखिया बन्दर ने।"

"भला जब तुम्हारे मुखिया की, जो सब में श्रेष्ठ है, ऐसी बुद्धि है, तो तुम्हारी कैसी होगी?"

यह बात सुनकर बन्दर गुस्से हो गए। उन्होंने कहा—

"हे पुरुष! तुम बिना जाने निन्दा कर रहे हो। भला [illegible] बिना हम कैसे जानें कि पौधा जम गया है?"

यह सुनकर बोधिसत्व ने कहा—"मैं आप लोगों की निन्दा नहीं [illegible]

४६. आराम दूसक जातक। २.३.२६७

रहा हूं और न उन दूसरे वानरों की, जो वन में हैं। विश्वसेन ही निन्दनीय है जिसके लिए आप वृक्ष लगा रहे हैं।"

: ४७ :

उल्लू और कौआ

पूर्व समय में, सृष्टि के प्रथम कल्प में, सभी मनुष्यों ने इकट्ठे होकर एक सुन्दर, शोभाशाली, आज्ञा-सम्पन्न, सब प्रकार परिपूर्ण पुरुष को चुनकर अपना राजा बनाया। चतुष्पादों ने भी इकट्ठे होकर एक सिंह को राजा बनाया। महासमुद्र में मछलियों ने आनन्द नाम की मछली को अपना राजा बनाया।

तब पक्षियों ने हिमालय प्रदेश में एक चट्टान पर इकट्ठे होकर विचार किया—"मनुष्यों में राजा दिखाई देता है, वैसे ही चतुष्पादों और मछलियों में भी। हमारे बीच राजा नहीं है। अराजकता की अवस्था में रहना उचित नहीं जंचता। हमारा भी राजा होना चाहिए। किसी एक को राजा के स्थान पर रखना है।" उन्होंने उपयुक्त पक्षी की तजवीज करते हुए एक उल्लू को चुनकर कहा—"यह हमको अच्छा लगता है।"

एक पक्षी ने सबकी सम्मति जानने के लिए तीन बार घोषणा की। जब तीसरी बार घोषणा हो चुकी तो एक कौवे ने सामने आकर कहा—"जरा ठहरो। अभी सभी सम्बन्धियों ने मिलकर उल्लू को राजा बनाया है। यदि मुझे आज्ञा दें तो मुझे भी एक बात कहनी है।"

उसको आज्ञा देते हुए सभी पक्षियों ने कहा—"हे सौम्य! तुझे आज्ञा है। केवल मतलब की बात कह, क्योंकि छोटे पक्षियों में भी प्रज्ञावान और ज्ञानी होते ही हैं।"

कौवे ने ऐसी अनुज्ञा पाकर कहा—

---

४७. उलूक जातक। २.२.२७०

"अहो ! उल्लू का अभिषेक मुझे अच्छा नहीं लगता। अभी क्रुद्ध नहीं है तब इसका मुख ऐसा है, क्रुद्ध होने पर भला कैसा लगेगा ?"

इतना कह "मुझे अच्छा नहीं लगता, मुझे अच्छा नहीं लगता" कहता हुआ आकाश में उड़ा। उल्लू ने उठकर उसका पीछा किया। तब से उन दोनों का परस्पर वैर बंधा।

पक्षी स्वर्ण-हंस को राजा बनाकर अपने-अपने वासस्थान चले गये।

: ४८ :

कुरुधर्म जातक

पूर्व समय में कुरु राष्ट्र के इन्द्रप्रस्थ नगर में धनञ्जय राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म लिया। क्रमशः बड़े होने पर तक्षशिला जाकर शिल्प सीखा। आगे चलकर पिता के मरने पर राज्य प्राप्त किया। दस राजधर्मों के अनुकूल चलते हुए कुरुधर्मानुसार आचरण किया। कुरुधर्म कहते हैं पांच शीलों को। बोधिसत्व ने उनका पवित्रता से पालन किया। नगर के चारों द्वारों पर, नगर के बीच में और निवास-गृह के द्वार पर छः दानशालाएं बनवा प्रतिदिन छः लाख का दान करते हुए सारे जम्बूद्वीप को उन्मादित कर दिया।

उस समय कलिङ्ग राष्ट्र के दन्तपुर नगर में कालिङ्ग राजा राज्य करता था। उसके राष्ट्र में वर्षा न हुई। सारे राष्ट्र में अकाल पड़ गया। बीमारी फैल गई। मनुष्य अकिंचन हो बच्चों को हाथों पर लेकर जहां-तहां घूमते थे। सारे राष्ट्र के निवासियों ने इकट्ठे होकर दन्तपुर पहुंचकर राजद्वार पर शोर मचाया। राजा ने खिड़की के पास खड़े होकर उनका शोर सुनकर पूछा—

४८. कुरुधम्म जातक। ३.३.२७६

"यह क्यों चिल्लाते हैं ?"

"महाराज ! वर्षा नहीं होती। खेत नष्ट हो गये हैं। अकाल पड़ गया है। बीमारी फैल गई है। मनुष्य सब-कुछ छोड़कर केवल बच्चों को हाथों पर उठाये घूमते हैं।"

"पहले के राजा वर्षा न होने पर क्या करते थे ?"

"महाराज ! पहले के राजा दान देते थे। शील का पालन करते थे। एक सप्ताह तक दूब के बिछौने पर लेटे रहते थे। तब वर्षा होती थी।"

"अच्छा" कहकर राजा ने वैसा ही किया। तो भी वर्षा न हुई।

राजा ने अमात्यों से पूछा—"अब क्या करूं ?"

"महाराज ! इन्द्रप्रस्थ नगर में धनञ्जय नामक कुरु-नरेश का अंजन-वसभ नाम का हाथी है, उसे लायें। उसके लाने से वर्षा होगी।"

"वह राजा दुर्जय है। उसका हाथी कैसे लायें ?"

"महाराज ! उसके साथ युद्ध करने की आवश्यकता नहीं। राजा दानी है। मांगने पर शीश भी काटकर दे सकता है। सुन्दर आंखें निकालकर दे सकता है। सारा राज्य भी त्याग सकता है। हाथी का तो कहना ही क्या ! मांगने पर अवश्य ही दे देगा।"

राजा ने ब्राह्मण-ग्राम से आठ ब्राह्मण बुला, खर्चा देकर उन्हें हाथी मांगने के लिए भेजा। वे राही का भेस बनाकर चल दिये। सभी जगह एक ही रात ठहरते हुए जल्दी ही नगर-द्वार पर जा पहुंचे। नगर-द्वार पर दानशाला में भोजन कर थकावट उतारकर पूछा—

"राजा दान-शाला में कब आता है ?"

आदमियों ने उत्तर दिया—"पक्ष में तीन दिन—चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अष्टमी को। कल पूर्णिमा है, इसलिए कल आयेगा।"

अगले दिन ब्राह्मण प्रातःकाल ही जाकर पूर्व-द्वार पर खड़े हो गये। बोधिसत्व भी प्रातःकाल स्नान कर, चन्दन आदि का लेप कर, सब अलंकारों से अलंकृत हो, सजे हुए श्रेष्ठ हाथी के कन्धे पर चढ़कर, बहुत से अनुयायियों के साथ पूर्व-द्वार की दानशाला में पहुँचा। उतरकर सात-

जनों को अपने हाथ से भोजन दिया और मनुष्यों को [illegible]
तरह से दो। स्वयं हाथी पर चढ़कर दक्षिण-द्वार को चला। पूर्व-
द्वार सिपाहियों की अधिकता के कारण ब्राह्मणों को मौका न मिला।
दक्षिण-द्वार पर पहुँचे। राजा को आते देखकर द्वार से थोड़ी दूर
ऊँचे स्थान पर खड़े हो गये। जब राजा पास आया तो उन्होंने [illegible]
कर राजा का जय-जयकार किया। वज्र-अंकुश से हाथी को लौटाकर
उनके पास पहुँचा। पूछा—"ब्राह्मणो! क्या चाहते हो?" उन्होंने
का गुणानुवाद करते हुए कहा—

"हे जनाधिप! आपकी श्रद्धा और शील की बड़ी कीर्ति फैली हुई
इसीके कारण आपके राष्ट्र में खूब वर्षा होती है। हमारे [illegible]
वर्षा नहीं हो रही है। अकाल पड़ा है। हम आपका अंजन-वर्ण हाथी
आये हैं कि शायद इससे वर्षा हो जाय। क्यों न हम हाथी का
ने विनिमय करें?"

यह सुनकर राजा ने कहा—"हे ब्राह्मणो! मैं तुम्हें यह [illegible]
राज्य परिभोग्य, यशस्वी, अलंकृत तथा स्वर्ण-जाली से ढका हाथी
हूँ। जहां चाहो ले जाओ।"

हाथी लेकर ब्राह्मण दन्तपुर नगर पहुँचे। हाथी के आने पर भी वर्षा
हुई। राजा ने पूछा—"अब क्या कारण है?"

"कुरुराज धनञ्जय कुरु-धर्म पालता है। इसलिए उसके राष्ट्र
पन्द्रहवें दिन, दसवें दिन वर्षा होती है। यह राजा के गुणों का
प्रताप है। इस पशु में गुण होने पर भी [illegible] कितने गुण हो
हैं?"

"तो अनुयायियों सहित इस सजे-सजाये हाथी को वापिस [illegible]
को दो। वह राजा जिस धर्म का पालन करता है, [illegible]
लेकर लाओ।"

ब्राह्मणों और अमात्यों ने जाकर राजा को हाथी सौंपकर निवेदन
किया—"देव! इस हाथी के जाने पर भी हमारे देश में वर्षा नहीं हुई।

आप कुरु-धर्म का पालन करते हैं। हमारा राजा भी कुरु-धर्म का पालन करना चाहता है। उसने हमें सोने की तख्ती पर लिखवाकर लाने के लिए भेजा है। हमें कुरु-धर्म दें।"

"तात! मैंने सचमुच कुरु-धर्म का पालन किया है, लेकिन अब मेरे मन में उसके बारे में सन्देह है। उससे स्वयं मेरा चित्त प्रसन्न नही है। इसलिए तुम्हें नहीं दे सकता।"

राजा का शील उसके चित्त को प्रसन्नता क्यों नहीं देता था? उस समय प्रति तीसरे वर्ष कार्तिक मास में कार्तिकोत्सव नाम का उत्सव होता था। उस उत्सव को मनाने के लिए राजागण सब अलंकारों से सजकर देवताओं का भेष बनाते थे। चित्रराज नामक यज्ञ के पास खडे होकर चारों ओर फूलों से सजे चित्रित बाण फेकते थे। इस राजा ने भी वह उत्सव मनाते समय एक तालाब के किनारे खड़े होकर चारों ओर चित्रित बाण फेंके। तीन ओर फेंके बाण दिखाई दिये। तालाब के तल पर फेंका बाण दिखाई न दिया। राजा के मन में अनुताप हुआ कि कहीं मेरा फेंका हुआ बाण मछली के शरीर में तो नहीं जा लगा। प्राणी को हिंसा से शील टूट गया। इसी सन्देह के कारण शील राजा के मन को प्रसन्न नहीं करता था।

उसने कहा—"तात! मुझे कुरु-धर्म के बारे में अनुताप है, लेकिन मेरी माता ने उसे अच्छी तरह पालन किया है। उससे ग्रहण करो।"

"महाराज! 'मैं जीव-हिंसा करूंगा' यह आपकी चेतना नहीं थी। बिना चित्त के जीवहिंसा नहीं होती। आपने जिस कुरु-धर्म का पालन किया है, वह हमें दें।

"तो लिखो" कहकर सोने की तख्ती पर लिखवाया—"जीवहिंसा नहीं करनी चाहिए। चोरी नहीं करनी चाहिए। काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार नहीं करना चाहिए। झूठ नहीं बोलना चाहिए। मद्य-पान नहीं करना चाहिए।"

दूतों ने राजा को प्रणाम कर उनकी माता के पास जाकर कहा—

के मरने ... पद पर प्रतिष्ठित होकर यह मेरी खातिर करेगा।" तब उसे ध्यान आया—"मैंने कुरुधर्म का पालन करनेवाली होकर स्वामी के रहते दूसरे पुरुष की ओर बुरी दृष्टि से देखा। मेरा शील भंग हो गया होगा।" उसके मन में यह संदेह पैदा हुआ।

दूतों ने उत्तर दिया—"आर्ये! चित्त में ख्याल आने मात्र से दुराचार नहीं होता। तुम ऐसी बात में भी सन्देह करती हो तो तुमसे उल्लंघन कैसे हो सकता है? इतने से शील भंग नहीं होता। हमें कुरुधर्म दें।"

उससे भी कुरुधर्म ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

"तात! ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। उपराज अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होंने उपराज के पास जाकर कुरुधर्म की याचना की।

वह सन्ध्या समय रथ पर बैठकर राजा की सेवा में जाता था। यदि राजा के पास खाकर वहीं सो रहना चाहता तो रस्सी और चाबुक को धुरी के अन्दर रख देता था। उस इशारे को समझकर आदमी दूसरे दिन आकर प्रतीक्षा करते। यदि उसी समय लौटने की इच्छा होती तो रस्सी और चाबुक को रथ में ही छोड़कर राजा से भेंट करने जाता। उपराज अभी लौटेगा, ऐसा समझकर आदमी राज-द्वार पर ही खड़े रहते।

रस्सी और चाबुक को रथ में ही छोड़कर एक दिन वह राजमहल में गया। उसके जाते ही वर्षा होने लगी। वर्षा होने के कारण राजा ने उसे लौटने नहीं दिया। वह वहीं खाकर सो गया। "अब निकलेगा-अब निकलेगा" सोचकर लोग प्रतीक्षा करते हुए सारी रात भीगते खड़े रहे। उपराज ने दूसरे दिन निकलकर लोगों को भीगे वस्त्र खड़े देखा। सोचने लगा—"मैं तो कुरुधर्म का पालन करता हूं और मैंने इतने लोगों को कष्ट दिया। मेरा शील भंग हो गया होगा।" इस सन्देह के कारण उसने दूतों से कहा—"मैं सचमुच कुरुधर्म का पालन करता हूँ; लेकिन इस समय मेरे मन में सन्देह पैदा हो गया है। मैं कुरुधर्म का उपदेश नहीं दे सकता।"

रस्सी का एक सिरा खेत के मालिक के पास था, एक उसके पास। जिस सिरे को उसने पकड़ रक्खा था, उस सिरे की रस्सी से बंधा डण्डा एक केकड़े के बिल पर आ पहुंचा। वह सोचने लगा, "अगर डण्डे को बिल में उतारूं तो बिल के अन्दर का केकड़ा मर जायगा। पीछे की ओर उतारूं तो गृहस्थ का हक मारा जायगा।" तब उसे ऐसा सूझा कि "यदि बिल में केकड़ा होगा तो प्रकट होगा। डण्डे को बिल में ही उतारूंगा।" उसने डण्डा उतार दिया। केकड़े ने 'किरि' आवाज की। तब उसे चिन्ता हुई कि डण्डा केकड़े की पीठ में घुस गया होगा और केकड़ा मर गया होगा। उसने यह बात दूतों को सुनाकर कहा कि "इस कारण कुरुधर्म के प्रति मेरे मन में सन्देह है। इसलिए तुम्हें नहीं दे सकता।"

दूतों ने कहा कि "आपकी यह मंशा नहीं थी कि केकड़ा मरे। बिना इरादे के कर्म नहीं होता। इतनी बात में भी आप सन्देह करते हैं तो आप से उल्लंघन कैसे हो सकता है?"

अमात्य ने कहा—"ऐसा होने पर भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है। सारथी अच्छी तरह रक्षा करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होंने उसके पास भी पहुँचकर याचना की।

सारथी एक दिन राजा को रथ में उद्यान ले गया। राजा दिन-भर क्रीड़ा करके शाम को निकला। रथ पर चढ़कर नगर की ओर चला कि आकाश में बादल घिर आये। सारथी ने राजा के भीगने के डर से घोड़ों को चाबुक दिखाया। सिन्धव घोड़े तेजी से दौड़े। तब से उद्यान जाते और लौटते समय भी घोड़े उस स्थान पर तेजी से दौड़ने लगते। उनको ख्याल हो गया कि "इस स्थान पर खतरा होगा, इसलिए सारथी ने हमें इस स्थानपर चाबुक दिखाया था।" सारथी को चिन्ता हुई—"राजाके भीगने या न भीगने से मुझ पर दोष नहीं आता; लेकिन मैंने सुशिक्षित सिन्धव घोड़ों को चाबुक दिखाने की गलती की। इसलिए अब आते-जाते घोड़े भागने का कष्ट उठाते हैं। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। वह भंग हो गया होगा।"

लगा—"मैंने चिह्न के धान मापे गये ढेर में फेंके या बिना मापे गये ढेर में ? यदि मापे गये ढेर में फेंके तो अकारण ही राजा के हिस्से को बढ़ा दिया और किसानों के हिस्से की हानि की। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। वह भंग हो गया होगा।"

यह बात सुनाकर उसने कहा—"इस कारण से मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। मैं नहीं दे सकता। हां, द्वारपाल अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

दूत बोले—"आपकी चोरी की नीयत नहीं थी। बिना उसके चोरी का दोष लागू नहीं किया जा सकता। इतनी-सी बात में भी सन्देह करनेवाले आप किसीकी क्या चीज ले सकेंगे ?"

उन्होंने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा। तब द्वारपाल के पास जाकर याचना की।

द्वारपाल ने एक दिन नगर-द्वार बन्द करते समय तीन बार घोषणा की। एक दरिद्र आदमी अपनी छोटी बहन के साथ लकड़ी-पत्ते लेने जंगल गया था। लौटते समय द्वारपाल की आवाज सुनकर बहन को लेकर शीघ्रता से अन्दर आया। द्वारपाल बोला—"तू नहीं जानता कि नगर में राजा है ? तू नहीं जानता कि समय रहते ही इस नगर का द्वार बन्द हो जाता है ? अपनी स्त्री को ले जंगल में रति-क्रीड़ा करता घूमता है ?"

उसने उत्तर दिया—"स्वामी, यह मेरी भार्या नहीं है। बहन है।" तब द्वारपाल चिन्तित हुआ—"मैं कुरुधर्म का पालन करता हूं। वह भंग हो गया होगा।"

यह बात सुनाकर उसने दूतों से कहा—"इस बात से मेरे दिल में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। हां, वेश्या अच्छी तरह पालन करती है। उससे ग्रहण करें।"

दूतों ने कहा—"आपने जैसा समझा, वैसा कहा। इसमें शील भंग नहीं होता। इतनी-सी बात के लिए आप अनुताप करते हैं तो जान-बूझकर झूठ क्या बोलेंगे !"

इस प्रकार इन ग्यारह जनों द्वारा पालन किया गया शील सोने की पट्टी पर लिखकर दन्तपुर लाया गया। कलिङ्ग-नरेश ने भी उस कुरुधर्म में स्थित हो पांच शीलों को पूर्ण किया। उस समय सारे कलिंग राष्ट्र में वर्षा हुई। तीनों भय शान्त हो गये। राष्ट्र का कल्याण हुआ। पैदावार खूब हुई।

: ४९ :

संघ में शक्ति है

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए।

उसी समय वाराणसी के पास बढ़इयों का एक गांव था। उनमें से एक बढ़ई एक दिन जंगल गया। वहां उसने गढ़े में एक सूअर के बच्चे को देखा। लाकर पोसा। बड़ा होकर वह महान शरीरवाला, टेढ़ी दाढ़ोंवाला, किन्तु बड़ा सदाचारी हुआ। जब बढ़ई वृक्ष छीलते तो वह थूथनी से वृक्ष को उलटता-पलटता। फरसा, रुखानी, मोगरी आदि औजार मुँह से उठाकर ला देता। काले डोरे का सिरा पकड़ लेता।

यह सोचकर कि कोई उसे खा न जाय, बढ़ई सूअर को जंगल में छोड़ आया। सूअर ने जंगल में सुरक्षित स्थान खोजते हुए पर्वत की ओट में एक महान कन्दरा देखी। वहां कन्द-मूल खूब थे और सुख से रहा जा सकता था। उसे देखकर सैकड़ों सूअर उसके पास पहुँचे। उसने उनसे कहा—"मैं तुम लोगों को ही ढूंढता था। तुम यहां मिल गये। यह स्थान रमणीय है। मैं अब यहीं रहूँगा।"

"सचमुच यह स्थान रमणीय है, लेकिन यहां खतरा है।"—सूअरों ने उत्तर दिया।

---

४९. वड्ढकी सूकर जातक। २.४.२८३

"मैंने भी तुम्हें देखकर यही जाना। चरने के लिए ऐसी अच्छी जगह रहते हुए भी शरीर में मांस-रक्त नहीं है। क्यों ऐसा होता है?"

"एक व्याघ्र आकर हमें देखता है, उठा ले जाता है।"

"लगातार ले जाता है या कभी-कभी?"

"लगातार।"

"व्याघ्र कितने हैं?"

"एक ही।"

"तुम इतने हो और एक से पार नहीं पा सकते?"

"नहीं।"

"मैं उसे पकड़ूंगा, तुम मेरा कहना करना। वह व्याघ्र कहाँ रहता है?"

"इसी पर्वत में।"

उसने रात को ही सूअरों को चर लेने के लिए कहा। युद्ध-स्थान का विचार करते हुए उसने व्यूह रचने का निश्चय किया। बच्चों और उनकी माताओं को बीच में रखा। उनके गिर्द बांझ सूअरियों को। उनके गिर्द बच्चे सूअरों को। उनके गिर्द [illegible] सूअरों को और उनके गिर्द युद्ध करने में समर्थ [illegible] दस-दस बीस-बीस सूअरों के झुण्ड जहाँ-तहाँ स्थापित किये। अपने खड़े होने के स्थान के आगे एक गोल गढ़ा खुदवाया। [illegible] की तरह क्रमानुसार [illegible] होता हुआ [illegible] भूमि [illegible]। [illegible] सूअरों को जहाँ-तहाँ इसलिए नियुक्त किया कि [illegible] पाकर साहस बढ़ायें। इतने में सूर्योदय हो गया।

व्याघ्र ने [illegible] देखा कि समय हो गया। उसने सामने के [illegible] पर खड़े हो आँखें खोलकर सूअरों को देखा। [illegible] ने सूअरों से इशारा किया कि वे भी उसकी ओर देखें। उन्होंने वैसे ही किया। व्याघ्र ने मुँह खोलकर सांस ली। सूअरों ने भी वैसा ही किया। व्याघ्र ने [illegible] किया। सूअरों ने भी किया। इस प्रकार जो उसने किया, वही उन्होंने

भी किया। वह सोचने लगा—"पहले सूअर मेरे देखने पर भागने का प्रयत्न करते हुए भाग भी न पाते थे। आज बिना भागे, मेरे प्रति शत्रु बनकर जो मैं करता हूं, वही वे करते हैं। एक ऊंचे-से स्थल पर खड़ा हुआ उनका नेता भी है। आज मैं गया तो जीतने की सम्भावना नहीं है।"

वह रुककर अपने निवास-स्थान को लौट गया। वहां एक कुटिल जटाधारी तपस्वी रहता था, जो उसके लाये मांस को खाता था। उसने इसे खाली आते देखा तो बोला—

"पहले तू इस प्रदेश के सूअरों को अभिभूत कर उनमें से अच्छे-अच्छे सूअर मारकर खाता था। अब एक ओर अकेला होकर ध्यान कर रहा है। हे व्याघ्र! आज तुझमें बल नहीं है?"

यह सुनकर व्याघ्र ने उत्तर दिया —

"पहले ये डर के मारे अपनी-अपनी गुफाओं को खोजते हुए जिस-तिस दिशा में भाग जाते थे। अब एक-एक जगह इकट्ठे होकर आवाज लगाते हैं। आज इनका मर्दन करना मेरे लिए दुष्कर है।"

तब उसे उत्साहित करके कुटिल-तपस्वी ने कहा—"जा, ज्यों ही तू चिंघाड़कर छलांग मारेगा, त्योंही सब डरकर तितर-बितर हो भाग जायेंगे।" इसके उत्साह दिलाने पर व्याघ्र बहादुर बन फिर जाकर पर्वत-शिखर पर खड़ा हुआ। देखकर सूअरों ने वढ़ई-सूअर से कहा— "स्वामी! महाचोर फिर आ गया।"

"मत डरो। अब उसे पकड़ूंगा।"

वढ़ई-सूअर दोनों गढ़ों के बीच में खड़ा था। व्याघ्र ने गरजकर उस-पर आक्रमण किया। सूअर जल्दी से पलटकर सीधे खने गढ़े में जा पड़ा। व्याघ्र वेग को न रोक सकने के कारण ऊपर-ऊपर जाकर छाज की तरह के टेढ़े खने गढ़े में अत्यन्त बीहड़ जगह गिरकर ढेर-सा हो गया। सूअर गढ़े से निकला। बिजली की तेजी से जाकर व्याघ्र की जांघों में अपनी कापों से प्रहार कर नाभि तक चीर डाला।

लेकिन सूअरों को अभी सन्तोष नहीं था। वढ़ई-सूअर ने उनको

: ५० :

दरिद्र का दरिद्र

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व सेठ-कुल में पैदा हुए। माता पिता के मरने पर सारी संपत्ति के मालिक हुए।

उसके पास चालीस करोड़ धन तो केवल जमीन में गडा था। पुत्र उसका एक ही था। बोधिसत्व ने बहुत दानादि पुण्य-कर्म किया। मरने पर देवराज शक्र होकर पैदा हुए।

लेकिन उसका पुत्र नालायक निकला। उसने गली घेरकर मण्डप बनवाया और लोगों को साथ लेकर सुरा पीने बैठा। छलांग मारना, दौड़ना, गाना, नाचना आदि करनेवालों को हजार-हजार रुपये इनाम देता। उसे स्त्री की लत, सुरा की लत, मांस की लत लग गई। वह ढूंढता हुआ फिरता था कि गाना कहां है, नाचना कहां है, बजाना कहां है? तमाशे का अत्यधिक अभिलाषी होकर भटकता फिरता था। इस प्रकार थोड़े ही समय में अपना चालीस करोड़ धन और काम में आने लायक सामान नष्ट कर दिया। स्वयं दरिद्र होकर चीथड़े पहने घूमने लगा।

शक्र ने ध्यान लगाकर उसके दरिद्र होने की बात जानी। पुत्र-प्रेम के वशीभूत होकर वह उसके पास आया और सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला घड़ा देकर कहा—"इस घडे को संभालकर रखना, जिससे टूटने न पाये। यह तेरे पास रहेगा तो धन की सीमा नहीं रहेगी। अप्रमादी होकर रहना।"

उसने इन्द्र की बात न मानी और उसी समय से सुरापान करने लगा। बदमस्त होकर वह उस घड़े को आकाश में फेंकता और फिर वापिस रोकता। एक बार वह चूक गया। घड़ा जमीन पर गिरा और टूट गया। फिर दरिद्र हो गया। फिर चीथड़े लपेट, हाथ में खप्पर लेकर भीख

---

५०. भद्रघट जातक। ३.५.२९१

भात लायें ।" वह कौओं के साथ बाराणसी में प्रविष्ट हुआ । रसोईघर के समीप कौओं की टोलियां बनाकर उन्हें जहां-तहां सुरक्षा के लिए खड़ा किया । स्वयं आठ कौओं के साथ राजा का भोजन ले जाने की प्रतीक्षा करता हुआ रसोईघर की छत पर बैठा । उसने उन कौओं से कहा—'राजा का भात ले जाते समय मैं बर्तनों को गिरा दूंगा । बर्तनों के गिरते ही मेरी जान नहीं बचेगी । तुम में से चार जने भात से मुँह भरकर और चार जने मत्स्य-मांस से मुंह भरकर ले जाकर पटरानी सहित काकराज को खिलाना । अगर वह पूछे कि सेनापति कहां है तो कहना, पीछे आता है ।"

रसोइये ने भोजन तैयार किया और बहंगी पर रखकर राजकुल ले चला । जब वह राजाङ्गण में पहुँचा तो काक सेनापति ने कौओं को इशारा किया । स्वयं उछलकर भात ले जानेवाले के कन्धे पर बैठकर नाखूनों से प्रहार किया । बर्छी की नोक जैसी चोट के समान अपनी चोंच से उसकी नाक पर चोट की और उडकर दोनों परों से उसका मुँह ढक लिया । महान तल्ले पर घूमते हुए राजा ने उस कौवे की वह करतूत देखी । उसने भात लानेवाले को कहा—"अरे भात लानेवाले ! बर्तन को छोड़, कौवे को ही पकड़ ।" उसने बर्तन छोड़ कौवे को ही जोर से पकड़ लिया । राजा बोला—"यहां आ ।"

उस समय कौवे आये और जितना स्वयं खा सकते थे, खाकर जैसे कहा गया था, वैसे लेकर गये । तब बाकी कौवों ने आकर शेष भोजन किया । इन आठ जनों ने जाकर रानी सहित काकराज को खिलाया । सुफस्सा का दोहद शान्त हो गया ।

भात लानेवाला, कौवे को राजा के पास ले गया । राजा ने उससे पूछा—"अरे काक ! तूने मेरा भय नहीं किया । भात लानेवाले की नाक तोड दी । भात के बर्तन फोड डाले । अपनी जान खतरे में डाली । ऐसा काम क्यों किया ?"

"महाराज ! हमारा राजा बाराणसी के पास रहता है । मैं उसका सेनापति हूँ । उसकी सुफस्सा नामक भार्या को तुम्हारा भोजन खाने का दोहद उत्पन्न हुआ । उस राजा का भेजा हुआ मैं यहाँ आया । मैंने अपने स्वामी

में उन्हें नगर में न आने देते। भेंट भेजकर उन्हें बाहर ही रखते। इस प्रकार सारे जम्बूद्वीप में घूमकर अस्सक राज के पोतलि नगर पहुँचीं। अस्सक-राज ने भी नगर-द्वार बन्द करवा लिये और भेंट भेजी। उसका नन्दिसेन नामक अमात्य पण्डित था, बुद्धिमान था और था उपाय-कुशल। उसने सोचा—"इन राज-कन्याओं को सारे जम्बूद्वीप में घूम आने पर भी कोई प्रतिस्पर्द्धी नहीं मिला। ऐसा होने पर तो सारा जम्बूद्वीप तुच्छ-सा हो जाता है। मैं कलिङ्गराज के साथ युद्ध करूंगा।" नगर-द्वार पर पहुँचकर उसने द्वार-पालों को नगर-द्वार खोल देने के लिए कहा और आज्ञा दी कि उन्हें नगर में प्रवेश करने दो।

उसने उन लड़कियों को अस्सक-राजा को दिखाकर कहा—"आप डरें नहीं। ये सुन्दर, रूपवती कन्याएं हैं। इन्हें अपनी रानियां बना लें।" उसने उन्हें अभिषिक्त करा, उनके साथ आये आदमियों को विदा किया—"जाओ, अपने राजा से कहो कि अस्सक-राज ने राज-कन्याओं को रानी बना लिया।" उन्होंने जाकर कहा। कलिङ्ग-राज उसी समय बड़ी भारी सेना लेकर निकल पड़ा। उसने कहा—"अस्सक-राज मेरी सामर्थ्य से अभी परिचित नहीं है।"

नन्दिसेन ने जब उसका आगमन सुना तो सन्देश भिजवाया—"अपनी ही सीमा में रहे। हमारी सीमा में न आयें। दोनों राजाओं की सीमाओं के बीच ही युद्ध होगा।" उसने लेख सुना तो अपनी राज्य-सीमा पर रुका। अस्सक-नरेश भी अपनी राज्य-सीमा पर रुका।

उस समय बोधिसत्व ऋषि-प्रव्रज्या ले उन दोनों राज्यों के बीच पर्ण-कुटी बना रहते थे। कलिङ्ग-नरेश ने सोचा—"श्रमण कुछ जाननेवाले होते हैं। कौन कह सकता है, क्या हो। किसकी जीत हो, किसकी हार हो। तपस्वी को पूछूंगा।"

वह भेस बदलकर बोधिसत्व के पास गया। प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—"भन्ते! कलिङ्ग-नरेश तथा अस्सकराज युद्ध करने की इच्छा से अपनी-अपनी सीमा में तैयार खड़े हैं।

संग्राम उपस्थित होने पर 'मेरी विजय होगी ही' सोचकर कलिङ्ग ढीला पड़ गया। उसकी सेना भी यही सोचकर ढीली पड़ गई। सैनिक कवच उतारकर यथारुचि पृथक-पृथक हो घूमने लगे। जोर लगाने के समय जोर नहीं लगाया। दोनों राजा घोड़े पर चढ़कर युद्ध करने के लिए एक दूसरे के पास आये। दोनों के रक्षक-देवता भी पहले ही पहुँचे। वे परस्पर युद्ध करने के लिए तैयार हुए। लेकिन वे बैल केवल दोनों राजाओं को ही दिखाई देते थे, और किसी को नहीं। नन्दिसेन ने अस्सकराज से पूछा—

"महाराज! आपको देवता दिखाई देता है?"

"हाँ, दिखाई देता है।"

"कैसा आकार है?"

कलिङ्ग का रक्षक-देवता सर्वश्वेत वृषभ के रूप में दिखाई दे रहा है, हमारा रक्षक-देवता एकदम काला थका हुआ-सा।"

"महाराज! आप भयभीत न हों। हम जीतेंगे। कलिङ्ग की हार होगी। आप घोड़े की पीठ से उतरकर यह शक्ति-आयुध लें, सुशिक्षित सैन्धव घोड़े को पेट के पास बायें हाथ से दबायें। इन एक सहस्र आदमियों के साथ तेजी से जायें। जाकर कलिङ्ग के रक्षक-देवता को शक्ति-प्रहार से गिरा दें। तब हम हजार जने हजार शक्तियों से प्रहार करेंगे। इस प्रकार कलिङ्ग का रक्षक-देवता नष्ट हो जायगा। तब कलिङ्ग की हार होगी और हम जीत जायेंगे।"

राजाने "अच्छा" कहकर नन्दिसेन के सुझाव के अनुसार जाकर शक्ति से प्रहार किया। रक्षक-देवता का वहीं प्राणान्त हो गया। उसी समय कलिङ्ग हारकर भागा। कलिङ्ग ने भागते समय उस तपस्वी के पास जाकर पूछा—

"हे ब्रह्मचारी! तूने कहा था कि कालिङ्गों की विजय होगी और अस्सक वासियों को पराजय। महात्मा लोग भी झूठ बोलते हैं?"

तपस्वी ने उत्तर दिया—"महाराज! पराक्रमी पुरुष से देवता भी

मैंने तो सदाचारी को लड़की देने की इच्छा से विद्यार्थियों की परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया। मेरी लड़की तुम्हारे ही योग्य है।"

उसने अलंकृत करके लड़की बोधिसत्व को दी और शेष विद्यार्थियों से कहा—"तुम जो धन लाये हो, उसे अपने घर ले जाओ।"

: ५४ :

माली की लड़की

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व उसके अर्थधर्मानुशासक अमात्य थे।

एक दिन राजा खिड़की खोले राजाङ्गण की तरफ देखता हुआ खड़ा था। उसी समय एक माली की लड़की बेरों की टोकरी सिर पर लिये 'बेर लो, बेर लो' कहती हुई राजाङ्गण में से गुजर गई। वह लड़की बहुत सुन्दर थी और उसकी चढ़ती जवानी थी। राजा उस पर आसक्त हो गया। उसने खोज कराई कि उसकी शादी हो गई है कि नहीं। जब उसे मालूम हुआ कि वह अभी किसीकी नहीं है तो उसे बुलाकर अपनी पटरानी बनाया। बहुत सम्पत्ति दी। वह राजा की प्रिया हुई, मन को बहुत अच्छी लगनेवाली।

एक दिन राजा सोने की थाली में बेर रखे बैठा खा रहा था। सुजाता देवी ने राजा को बेर खाते देखकर कहा—"महाराज! यह सोने की थाली में रखे हुए सुन्दर लाल वर्ण अण्डे के समान क्या हैं जिन्हें आप खा रहे हैं?"

राजा को क्रोध आ गया। उसने सोचा—"बेर बेचनेवाली माली की लड़की अपने कुल के बेरों को भी नहीं पहचानती। तब उसने उससे

---

५४. सुजाता जातक। २.१.३०६

होने का साहस नहीं होता। कहीं तू मुझे खा ही न जाय!"

"मित्र! डर मत। मैं तुझे नहीं खाऊंगा। मेरे प्राण बचा।"

"अच्छा" कहकर उसने सिंह को करवट से लिटाया। मन में सोचा—"कौन जाने, यह क्या कर बैठे।" इसलिए उसने उसके नीचे और ऊपर के जबड़े में एक लकड़ी लगा दी, जिसमें वह मुंह न बन्द कर सके। तब मुंह में घुसकर हड्डी के सिरे पर चोंच से चोट की। हड्डी गिरकर बाहर निकल आई। उसने हड्डी गिराकर लकड़ी को चोंच से गिरा दिया और सिंह के मुंह से निकलकर शाखा पर जा बैठा।

नीरोग होकर एक दिन सिंह जंगली भैंसे को खा रहा था। पक्षी ने सोचा—"इसकी परीक्षा करूंगा।" उसने उसके ऊपर शाखा पर लटकते सिंह से पूछा—

"हे मृगराज! यथाशक्ति हमने तेरा उपकार किया था। तुझे नमस्कार है। कुछ हमें भी मिले।"

यह सुनकर शेर बोला—

"नित्य शिकार खेलनेवाले, रक्त पीनेवाले के मुंह में जाकर यही बहुत है कि आज तू जीता है।"

: ५६ :

आम की खोज

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व चाण्डाल योनि में पैदा हुए। बड़े होने पर कुटुम्ब पालने लगे। एक बार उसकी स्त्री को आम का दोहद पैदा हुआ। वह बोली—"स्वामी आम खाना चाहती हूं।"

---

५६. छपक जातक। ४.१.३०६

प्राणी भोजन पकाते ही हैं। ऐसा न हो कि यह तेरा किया अधर्म तुझे वैसे ही फोड़ दे जैसे पत्थर घड़े को। हे ब्राह्मण! उस सम्पत्ति को धिक्कार है, उस धन को धिक्कार है, जो पापपूर्ण जीविका या अधर्माचरण से प्राप्त हो।"

राजा ने उसके धार्मिक भाव से प्रसन्न होकर पूछा—

"तुम्हारी जाति क्या है?"

"देव! मैं चाण्डाल हूं।"

"भो! यदि तू जातिवाला होता तो मैं तुझे राजा बनाता। अब से मैं दिन का राजा हूंगा, तू रात का।"

उसने अपने गले में पहनी फूलों की माला उसके गले में डालकर उसे नगर का कोतवाल बनाया। तब से राजा उसका उपदेश मानकर आचार्य का आदर करके नीचे आसन पर बैठकर मंत्र सीखने लगा।

: ५७ :

क्षमा की पराकाष्ठा

पूर्व समय में कलाबु नाम का काशीराज राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व अस्सी करोड़ धनवाले ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। उनका नाम था कुण्ड-कुमार। बड़े होने पर वह तक्षशिला में सब शिल्प सीखकर आया और कुटुम्ब को पालने लगा। माता-पिता के मरने पर उसने धनराशि की ओर देखते हुए सोचा—"यह धन कमाकर मेरे सम्बन्धी यहीं छोड़ गये, बिना साथ लिये ही चले गये। मुझे इसे साथ ले चलना चाहिए।" उसने अपना वह सारा धन विचेय्य दान करके अर्थात् जो-जो कुछ भी ले जाय, वह उसे देकर दान दे दिया। स्वयं हिमालय में प्रवेश कर प्रव्रजित

---

५७. खंतिवादी जातक। ४.२.३१३

उन स्त्रियों ने राजा को क्रोध में भरा आता देखा तो उनमें जो राजा की अधिक प्रिया थी, उसने जाकर राजा के हाथ से तलवार ले ली। इस प्रकार उन्होंने राजा को शान्त किया। उसने आकर बोधिसत्व के पास खड़े होकर पूछा—

"श्रमण! तुम्हारा क्या वाद है?"

"महाराज! क्षमावाद।"

"यह क्षमा क्या?"

"गाली देने पर, प्रहार करने पर, मजाक करने पर अक्रोधी रहना।"

"अभी देखता हूँ, तुझ में क्षमा है या नहीं।" कहकर राजा ने जल्लाद को बुलवाया।

वह अपने स्वभावानुसार कुल्हाडा और कब्जेदार चाबुक लिये, पीतवस्त्र तथा लाल माला धारण किये आ पहुंचा। राजा को प्रणाम कर बोला—"क्या आज्ञा है?"

"इस चोर, दुष्ट तपस्वी को पकड़, घसीट, जमीन पर गिरा, चाबुक लेकर आगे-पीछे दोनों ओर दो हजार चाबुक लगा।"

उसने वैसा ही किया। बोधिसत्व की खलड़ी उतर गई, मांस फट गया, खून बहने लगा।

राजा ने पूछा—"भिक्षु! क्या वादी हो?"

"महाराज, ! क्षमावादी। क्या तुम समझते हो कि मेरी चमड़ी में क्षमा छिपी है? नहीं महाराज! मेरी चमड़ी में क्षमा नहीं छिपी है। तुम उसे नहीं देख सकते। क्षमा मेरे हृदय में है।"

चाण्डाल ने पूछा—"क्या करू महाराज?"

"इस दुष्ट तपस्वी के दोनों हाथ काट डाल।"

उसने कुल्हाडा ले गण्डक पर रखकर हाथ काट डाले। तब राजा ने कहा—"पैर काट डाल।"

उसने पांव काट डाले। हाथ-पांव की जड़ों से घड़े के मुंह में से लाख-रस बहने की तरह रक्त बहने लगा।

: ५८ :

लोह कुम्भी

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व काशी जनपद के किसी गांव में पैदा हुए। बड़े होने पर काम-भोगों को छोड़ ऋषियों की प्रव्रज्या ग्रहण की। ध्यान तथा अभिज्ञा उत्पन्न कर, ध्यान में ही रत रहकर हिमालय में रमणीय खण्ड में रहते थे।

उस समय वाराणसी-राज ने स्वप्न में चार नारकीयों की चार प्रकार की स्पष्ट आवाजें सुनीं। उसने ब्राह्मणों को बुलाकर स्वप्न सुनाया और चारों प्रकार के शब्दों के अर्थ और हेतु पूछे। ब्राह्मणों ने बताया कि "महाराज पर एक भारी खतरा आनेवाला है और वह सर्वचतुष्पद यज्ञ द्वारा शांत हो सकता है।" उनके ऐसा कहने पर राजा ने यज्ञ कराना स्वीकार किया। पुरोहितों ने ब्राह्मणों के साथ यज्ञ-कुण्ड बनवाया। अनेक प्राणी खम्बे के पास लाये गये।

उस समय बोधिसत्व ने मैत्री-भावना-युक्त चारिका करते हुए दिव्य-चक्षु से लोक को देखा। जब उन्हें यह दिखाई दिया तब उन्होंने सोचा "कि मुझे जाना चाहिए। अनेक जनों का कल्याण होगा।" वे ऋद्धि-बल से आकाश में उठकर वाराणसी-राज के उद्यान में उतरे। मंगलशिलापट पर सुवर्ण प्रतिमा की तरह बैठे।

तब पुरोहित के ज्येष्ठ शिष्य ने आचार्य के पास आकर निवेदन किया—"आचार्य! क्या हमारे वेदों में पराये को मारकर कल्याण करना असम्भव नहीं बताया है?"

"तू राज-धन चाहता है तो चुप रह। हम बहुत मत्स्य-मांस खायेंगे और धन पायेंगे।"

---

५८. लोह कुम्भी जातक। ४.२.३७४

गये। उनमें से 'दु' कहकर डूब जानेवाला प्राणी यह कहना चाहता था—

दुज्जीवितं अजीविम्ह ये सन्ते न ददम्हसे।
विज्जमानेसु भोगेसु दीपं ना कम्ह अत्तनो॥"

(पास होने पर भी जो नहीं दिया, यह जीवन भी खराब जीवन रहा। भोगों के होने पर भी अपने लिए द्वीप नहीं बनवाया।)

बोधिसत्व ने कहा—"वह कह न सका।" बोधिसत्व ने अपने ज्ञान ही से वह सब गाथा पूरी की। शेष गाथाएं भी इसी प्रकार पूरी कीं। उनमें 'स' कहकर जो बोलना चाहता था, उसकी गाथा यह है—

सट्ठिवस्स सहस्सानि परिपुण्णानि सब्बसो।
निरये पच्चमानानं कदा अन्तो भविस्सति॥

(हर प्रकार से पूरे साठ वर्ष तक नरक में जलते रहने का कब अन्त होगा?)

'न' कहकर बोलने की इच्छा रखनेवाले की यह गाथा थी—

नत्थि अन्तो कुतो अन्तो न अन्तो परिदिस्सति।
तदाहि पकतं पापं मयं तुह्यं च मारिस॥

(अन्त नहीं है। अन्त कहां से होगा ? अन्त दिखाई नहीं देता। मित्र ! मेरा और तुम्हारा पाप विशेष रहा है।)

'स' कहकर बोलने की इच्छा रखनेवाले की यह गाथा है—

सोहं नून इतो गन्त्वा योनिं लद्धान मानुसिं।
वदञ्ञू सील सम्पन्नो काहामि कुसलं बहुं॥"

(अब मैं निश्चय से यहां से जाकर मनुष्य-देह प्राप्त करने पर दयालु तथा सदाचारी होकर बहुत कुशल-कर्म करूंगा।)

इस प्रकार बोधिसत्व ने एक-एक गाथा कहकर उसको समझाया—"महाराज ! वह नारकीय पापी यह गाथा पूरी करके कहना चाहता था, लेकिन अपने पाप की महानता के कारण वैसा न कर सका। वह अपने कर्म को करता हुआ चिल्लाया। आपको इस आवाज के सुनने के कारण कोई खतरा नहीं है। आप न डरें।"

के तीर पर पहुंचा। एक मछुवे ने सात रोहित मछलियाँ पकड़ीं और उन्हें रस्सी में बाँधकर गंगा-किनारे वालू में दबा दिया। वह और मछलियाँ पकड़ने के लिए गंगा के नीचे की ओर जा रहा था। ऊदबिलाव ने मछली की गन्ध सूंघ, वालू हटा, मछलियों को निकालकर तीन बार घोषणा की—"कोई इनका मालिक है?" जब कोई मालिक न दिखाई दिया तो रस्सी के सिरे को मुंह से पकड़कर अपने निवास-स्थान पर लाकर रख दिया। "समय पर खाऊंगा" सोच, उन्हें देख, वह अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

गीदड़ ने भी निकलकर भोजन खोजते हुए एक खेत की रखवाली करनेवाले की झोंपडी में दो कबाब की सींखें, एक गोह और एक दही की हाँडी देखी। उसने तीन बार घोषणा की—"कोई इनका मालिक है?" जब कोई न दिखाई दिया तो दही की हाँडी लटकाने की रस्सी को गर्दन में लटका, कबाब की सींख और गोह को मुंह में उठा लाकर अपनी मांद में रखा। सोचा—"समय पर खाऊंगा।" वह भी अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

बन्दर भी वनखण्ड में जाकर आम का गुच्छा ले आया। वह भी उसे अपने निवास-स्थान पर रखकर "समय पर खाऊंगा" सोच, अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

बोधिसत्व तो "समय पर ही निकलकर बढ़िया घास खाऊंगा" सोच, अपनी झाडी में ही पड़े-पड़े विचार करने लगे—"मेरे पास आनेवाले मंगतों का मैं घास नहीं दे सकता। तिल-तण्डुल भी मेरे पास नहीं। यदि मेरे पास मंगता आया तो मैं उसे अपना शरीर-मांस दूंगा।"

उसके शील-तेज से शक्र का पाण्डुकम्बलवर्ण शिलासन गरम हो गया। उसने ध्यान लगाकर कारण मालूम किया। तब सोचा—"शशराज की परीक्षा लूंगा।" वह पहले ऊदबिलाव के निवास-स्थान पर पहुँचा। ब्राह्मण का वेश बनाकर खड़ा हुआ। ऊदबिलाव ने पूछा—"ब्राह्मण! किसलिए खड़ा है?"

उसने शक्र को सम्बोधित कर पूछा—"ब्राह्मण ! तेरी बनाई हुई आग अति शीतल है। मेरे शरीर के रोम-छिद्र तक को गरम न कर सकी। यह क्या बात है ?"

"पण्डित ! मैं ब्राह्मण नहीं, शक्र हूँ। तेरी परीक्षा लेने आया हूँ।"

बोधिसत्व ने सिंहनाद किया—"शक्र ! तेरी तो बात क्या, यदि यह सारा संसार भी मेरे दान की परीक्षा लेना चाहे तो वह मुझमें न देने की इच्छा नहीं देख सकता।"

शक्र बोला—"शश पण्डित ! तेरा गुण सारे कल्पों तक प्रसिद्ध रहे।" उसने पर्वत को निचोड़कर उसका रस ले चन्द्रमण्डल पर शश का आकार बना दिया। फिर बोधिसत्व को बुलाकर उस वन-खण्ड में, उसी झुरमुट में, नई दूब पर लिटाया। स्वयं अपने देवलोक को चला गया। चारों पण्डित एकमत होकर प्रसन्न-चित रहते हुए शील को पूरा कर, उपोसथ-व्रत का पालन करके कर्मानुसार परलोक गये।

: ६० :

कणवेर

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व काशी जनपद के गांव में एक गृहस्थ के घर चोर नक्षत्र में पैदा हुए। बड़े होने पर चोरी द्वारा जीविका चलाने लगे। लोक में वह बड़े बलवान, वीर और प्रसिद्ध हुए। कोई भी उस चोर को पकड़ न सकता था। एक दिन वह एक सेठ के घर में सेंध लगाकर बहुत-सा धन ले गया। नागरिकों ने आकर राजा से शिकायत की—"देव ! एक डाकू नगर लूट रहा है। उसे पकड़वायें।" राजा ने नगर-कोतवाल को 'उसे पकड़ने की आज्ञा दी।

---

६०. कणवेर जातक । ४.२.२१८

मिलता, जो इस हजार को लेकर नगर-कोतवाल के पास जाय।" सेठ-पुत्र ने श्यामा पर आसक्त होने के कारण कहा—"मैं जाऊंगा।"

"तो यह जो तुम लाये हो, यही लेकर जाओ।"

वह उसे लेकर नगर-कोतवाल के घर पहुँचा। नगर-कोतवाल ने उस सेठ-पुत्र को छिपी जगह में रखकर, चोर को छिपी गाड़ी में बिठाकर श्यामा के घर भेज दिया और कहलाया कि चोर देश-भर में प्रसिद्ध है, अच्छी तरह अंधेरा हो जाने दे। नगर-कोतवाल ने बहाना बनाया कि "लोगों के सो जाने के समय चोर को मरवाऊंगा।" फिर थोड़ा समय व्यतीत हो जाने पर, जब लोग सोने चले गये तब उसने सेठ-पुत्र को बड़े पहरे में वध-स्थान पर ले जाकर तलवार से सिर काट दिया। शरीर को सूली पर टांगकर नगर में प्रवेश किया।

उस समय से श्यामा किसी दूसरे के हाथ से कुछ नहीं ग्रहण करती। उसीके साथ रमण करती। बोधिसत्व सोचने लगा—"यदि यह किसी दूसरे पर आसक्त हो गई तो मुझे भी मरवाकर किसी दूसरे के साथ रमण करेगी। यह अत्यन्त मित्र-द्रोही है। मुझे चाहिए कि यहाँ न रहकर शीघ्र भाग जाऊं। लेकिन हां, जाते समय खाली हाथ नहीं जाऊंगा। इसके गहनों की गठरी लेकर जाऊंगा।" यह सोचकर कहा—

"भद्रे! हम पिंजरे में बन्द मुर्गों की तरह नित्य घर में ही रहते हैं। एक दिन उद्यान-क्रीड़ा के लिए चलें।"

उसने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। सब खाद्य-भोज्य सामग्री तैयार कराके, सभी गहनों से अलंकृत होकर उसके साथ पर्देवाली गाड़ी में बैठकर उद्यान को गई।

उसने उसके साथ खेलते हुए तय किया कि "अब मुझे भागना चाहिए।" उसे कनेर के वृक्षों के बीच ले जाकर उसका आलिंगन करने के बहाने उसे दबाकर बेहोश करके गिरा दिया। फिर उसके सब गहने उतारकर, उसीकी ओढ़नी में गठरी बांधकर, कंधे पर रखकर, बाग की दीवार लांघ कर भाग गया।

"न वह मरी है, न दूसरे की इच्छा करती है। वह एक ही भर्ता मानती है और उसीकी इच्छा करती है।"

"चाहे वह जीती हो या मरी, मुझे उससे प्रयोजन नहीं। उसने चिर-काल से संसर्ग किये हुए ध्रुव स्वामी को छोड़कर मुझ अध्रुव को अप-नाया, जिससे उसका पूर्व-संसर्ग नहीं था। अब वह मुझसे भी किसी दूसरे को बदल सकती है। इसलिए मैं यहां से भी और दूर जाता हूँ। उसे मेरे यहां से भी चल देने की बात कहना।"

उसने नट के देखते-ही-देखते कपड़ों को तेजी से संभाला और भाग निकला। नट ने जाकर सारा वृत्तांत श्यामा को सुनाया। उसने पश्चात्ताप करते हुए अपने ढंग से ही दिन काटे।

: ६१ :

सच्ची भार्या

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व उसके सर्वार्थसाधक अमात्य हुए। एक दिन राजा ने राजकुमार को सेवा में आते देखकर सोचा—"शायद यह मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र करे। उसने उसे बुलाकर आज्ञा दी—"तात, जबतक मैं जीता हूँ, तुम नगर में नहीं रह सकते। अन्यत्र रहकर मेरे मरने पर राज संभालना।"

उसने "अच्छा' कहकर स्वीकार किया। पिता को प्रणाम कर अपनी भार्या को साथ ले नगर से निकल पड़ा। प्रत्यन्त देश में पहुंचकर, पर्ण-कुटी बनाकर जंगल के फल-मूल खाकर रहने लगा। समय बीतने पर राजा मर गया।

उपराज ने नक्षत्र देखकर जाना कि पिता मर गया। वाराणसी आते हुए रास्ते में एक पर्वत देखा।

---

६१. सुच्चज जातक। ४.२.३२०

पर कि "इस पर्वत के स्वर्णमय होने पर मुझे क्या दोगे ?" उत्तर दिया था—"तू कौन है ? कुछ नहीं दूंगा ।" जो आसानी से दिया जा सकता था, वह भी नहीं दिया । उसका त्याग करने में क्या लगा था ? इन्होंने वाणी से भी पर्वत नहीं दिया ।"

यह सुनकर राजा ने कहा—"जो कहे, वही करे । जो न करे, वह न कहे । केवल कहनेवाले को पण्डित लोग पहचान लेते हैं ।"

यह सुनकर देवी ने राजा के सामने हाथ जोड़कर कहा—"राजपुत्र ! तुम सत्य और धर्म में स्थित हो । आपत्ति में पड़ने पर भी तुम्हारा मन सत्य में ही रमण करता है । तुम्हें नमस्कार है ।"

तब बोधिसत्व ने देवी की प्रशंसा की—"जो स्त्री दरिद्रपति के साथ दरिद्री बनकर रहती है और धनी होने पर धनवान बनकर, वही कीर्ति-मान नारी है । वही परम श्रेष्ठ भार्या है ।"

इस प्रकार बोधिसत्व ने देवी के गुण कहे और राजा से निवेदन किया—"महाराज ! यह तुम्हारी विपत्ति के समय तुम्हारे दुःख में शामिल रहीं । इनका सम्मान करना चाहिए ।" राजा ने बोधिसत्व के कहने से देवी के गुणों का ध्यान कर उसे सब ऐश्वर्य दिया और यह कहकर बोधिसत्व का सत्कार किया कि "तुमने मुझे देवी के गुण याद कराये ।"

: ६२ :

अन्धविश्वास

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था । उस समय बोधिसत्व शेर की योनि में पैदा हुए । वह बड़े होने पर जंगल में रहते थे । उस समय पश्चिम समुद्र के पास बेल और ताड़ का वन था । वहां एक खरगोश बेल-वृक्ष की जड़ में एक ताड़ गाछ के नीचे रहता था ।

---

६२. दद्दभ-जातक । ४.३.३२२

हाथियों से पूछा। वे बोले—"हम नहीं जानते, सिंह जानते हैं।" सिंह भी बोले—"हम नहीं जानते, व्याघ्र जानते हैं।" व्याघ्र भी—"हम नहीं जानते, गैंडे जानते हैं।" गैंडे भी—"हम नहीं जानते, बैल जानते हैं।" बैल भी—"हम नहीं जानते, भैंसे जानते हैं।" भैंसे भी—"हम नहीं जानते, नीलगायें जानती हैं।" नीलगायें भी—"हम नहीं जानतीं, सूअर जानते हैं।" सूअर भी—"हम नहीं जानते, मृग जानते हैं।" मृग भी—"हम नहीं जानते, खरगोश जानते हैं।" खरगोशों से पूछने पर उन्होंने उस खरगोश को दिखाकर कहा—"यह जानता है।"

तब उससे पूछा—"सौम्य! क्या तूने ऐसा देखा कि पृथ्वी उलट रही है?"

"स्वामी! हां, मैंने देखा।"

"कहां देखा?"

"पश्चिम समुद्र के पास में बेल और ताड़ के वन में रहता हूं। मैंने वहां बेल-वृक्ष की जड़ में ताड़-वृक्ष के पत्र की छाया में लेटे-लेटे सोचा था—"पृथ्वी उलटी तो मैं कहां जाऊंगा?" उसी समय पृथ्वी के उलटने का शब्द सुनकर मैं भागा हूं।"

सिंह ने सोचा—"निश्चय ही उस ताड़-पत्र पर पका बेल गिरने से 'धव' शब्द हुआ होगा। उसी शब्द को सुनकर इसने समझा होगा कि पृथ्वी उलट रही है और भागा है। मैं यथार्थ बात जानूंगा।" उसने जनता को आश्वासन दिया—"जहां इसने देखा है, वहां मैं पृथ्वी का उलटना या न उलटना यथार्थ रूप से जानकर आऊंगा। तबतक तुम सब यहीं रहो।"

उसने खरगोश को पीठ पर चढ़ाया और सिंह-वेग से छलांग मार उसे ताड़-वन में उतारकर कहा—"आ, अपनी देखी जगह दिखा।"

"स्वामी! साहस नहीं होता।"

"आ, डर मत।"

उसने बेल-वृक्ष के निकट जाकर कुछ दूर ही खड़े होकर कहा—"स्वामी! यह 'धव' आवाज़ होने का स्थान है।"

मांगते समय रोता है, नहीं देनेवाला 'नहीं है' कहकर रोता है। जनता मुझे और राजा को रोता हुआ न देखे। एकान्त में, छिपे हुए स्थान पर दोनों रोकर चुप हो जायेंगे।"

उसने राजा से कहा—"महाराज! एकान्त चाहिए।" राजा ने राज-पुरुषों को दूर हटा दिया। बोधिसत्व ने सोचा—"यदि मेरे याचना करने पर राजा ने न दिया तो हमारी मैत्री टूटेगी, इसलिए नहीं मांगूंगा।" उस दिन कहा—"महाराज! जायें, फिर किसी दिन देखूंगा।"

फिर एक दिन राजा के उद्यान आने पर उसी तरह किया। फिर उसी तरह और फिर उसी तरह। इस प्रकार याचना करते बारह वर्ष बीत गये। तब राजा ने सोचा—"आर्य, मुझसे एकान्त चाहते हैं; लेकिन परिषद् के चले जाने पर कुछ नहीं कह पाते। कहने की इच्छा रखे-ही-रखे बारह वर्ष बीत गये। इन्हें ब्रह्मचारी अवस्था में रहते चिरकाल बीत गया। मालूम होता है, उद्विग्न-चित्त होकर भोग भोगने की इच्छा से राज्य चाहते हैं; लेकिन राज्य का नाम न ले सकने के कारण चुप हो जाते हैं। आज मैं इन्हें राज्य से लेकर जो भी चाहेंगे, दूंगा।"

वह उद्यान में जाकर प्रणाम करके बैठा। बोधिसत्व ने 'एकान्त' चाहा; किन्तु लोगों के चले जाने पर भी वह कुछ न कह सके। तब राजा ने कहा—"आप बारह वर्ष से 'एकान्त चाहिये' कहकर एकान्त पाने पर भी कुछ नहीं कहते हैं। राज्य से लेकर सब कुछ देने को तैयार हूँ। जो इच्छा हो, वह निर्भय होकर मांगें।"

"महाराज! जो मैं मांगूंगा, वह देंगे?"

"भन्ते! दूंगा।"

"महाराज! मुझे रास्ता चलने के लिए एक तलेवाला एक जोड़ा जूता और एक पत्तों का छाता चाहिए।"

"भन्ते! बारह वर्ष तक आप यह न मांग सके?"

"महाराज! हां।"

"भन्ते! ऐसा क्यों किया?"

गोह का मांस है तो वह रस-तृष्णा से अभिभूत हो गया। सोचा—"गोह मेरे आश्रम पर नित्य आती है। उसे मारकर यथारुचि पकाकर खाऊंगा। घी, दही और मसाले इकट्ठे किये। काषाय वस्त्र से मुंगरी को ढककर पर्णकुटी के दरवाजे पर बोधिसत्व की प्रतीक्षा करता हुआ शान्त, दान्त की तरह बैठा रहा।

गोह ने आकर उसकी द्वेष भरी शकल देखकर सोचा—"इसने हमारी जाति के किसी पशु का मांस खाया होगा। मैं इसकी जांच करती हूं।" जिधर हवा जा रही थी, उधर खड़े होकर उसने शरीर की गन्ध सूंघी। उसे पता चल गया कि उसकी जाति के किसी पशु का मांस खाया गया है। वह तपस्वी के पास आकर लौट गई। तपस्वी ने जब देखा कि वह निकट नहीं आ रही है तो मुँगरी फेंकी। मुंगरी शरीर पर न लग कर पूंछ के सिरे पर लगी। तपस्वी बोला—"जा, मैं चूक गया।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"मुझे तो चूक गया, लेकिन चार अपायों को नहीं चूकेगा। मैं तुझे श्रमण समझ तुझ असंयत के पास आई। लेकिन तूने मुझे ऐसा मारा, जैसे कोई अश्रमण मारे। हे दुर्बुद्धि! जटाओं से तुझे क्या? और मृगचर्म के पहनने से क्या। अन्दर से तू मैला है और बाहर से धोता है।"

यह सुनकर तपस्वी ने वहा—"हे गोह! आ, रुक, शाली धान का भात खा। मेरे पास तेल है, नमक है और हींग, जीरा, अदरक, मिरच आदि मसाले भी बहुत हैं।"

"रख तू अपना तेल, नमक। पिप्पली मेरे अनुकूल नहीं पड़ती। इस सौ पोरसे के बिल में फिर प्रवेश करूंगी। अरे कुटिल! यदि यहां रहेगा तो आस-पास के मनुष्यों द्वारा 'यह चोर है' कहकर पकड़वाऊंगी और अपमानित कराऊंगी। शीघ्र भाग जा।"

कुटिल जटिल वहां से भाग गया।

यह सुन पुरोहित ने सोचा—"यद्यपि मुझ में इन गुणों में से एक भी गुण नहीं है तो भी झूठ बोलकर ये फूल ले लूं, जिससे जनता मुझे इन गुणों से युक्त समझेगी।" उसने कहा—"मैं इन गुणों से युक्त हूँ।" और वे पुष्प मँगवाकर पहने। तब दूसरे देव-पुत्र से याचना की।

उसने कहा—"जो धर्म से धन खोजे, ठगी से धन पैदा न करे और योग्य वस्तुओं के मिलने पर प्रमादी न बने, वही कक्कारु पुष्प पाने के योग्य है।"

"मैं इन गुणों से युक्त हूँ" कहकर पुरोहित ने पुष्प मंगवाकर पहने और तीसरे देव-पुत्र से याचना की।

उसने कहा—"जिसका प्रेम हल्दी की तरह नहीं अर्थात् जो स्थिर प्रेम वाला है, जिसकी श्रद्धा दृढ़ है, जो किसी स्वादिष्ट वस्तु को अकेले नहीं खाता, वह कक्कारु के योग्य है।"

"मैं इन गुणों से युक्त हूं" कहकर पुरोहित ने वे पुष्प मंगवाकर पहने। तब चौथे देव-पुत्र से याचना की।

उसने कहा—"जो न सामने सन्त-जनों की हंसी उड़ाता है, न अनुपस्थिति में ही, जो जैसा कहता है वैसा करता है, वह कक्कारु के योग्य है।"

"मैं इन गुणों से युक्त हूँ" कहकर पुरोहित ने वे पुष्प भी मंगवाकर पहने।

चारों देव-पुत्र चारों गजरे पुरोहित को ही देकर देव-लोक गये। उनके चले जाने पर पुरोहित के सिर में बड़ा दर्द हुआ। ऐसा लगता था, जैसे किसी धार वाली चीज से काटा जाता हो वा लोहे के पट्टे से रगड़ा जाता हो। वह दुःख से पीड़ित होकर इधर-उधर लोटता हुआ जोर से चिल्लाया। लोगों ने पूछा—"क्या बात है?" वह बोला—

"मैंने अपने में जो गुण नहीं हैं उनके बारे में झूठ ही 'है' कह उन देव-पुत्रों से पुष्प माँगे। इन्हें मेरे सिर पर से ले जाओ।"

उन्हें निकालने का प्रयत्न करने पर लोग न निकाल सके। लोहे के पट्टे

अनेक अनुयायियों के साथ आदमियों को भेजा कि "जाओ, जम्बुद्वीप-भर में घूमो। जहां इस तरह की ब्राह्मण-कुमारी दिखाई दे, वहाँ यह प्रतिमा देकर उसे यहां ले आओ।" उस समय एक पुण्यवान प्राणी ब्रह्मलोक से च्युत होकर काशी-राष्ट्र में ही एक निगम-ग्राम में अस्सी करोड़ धनवाले ब्राह्मण के घर में लड़की होकर पैदा हुआ था। उसका नाम रखा गया था—सम्मिलहासिनी।

वह सोलह वर्ष की होने पर सुन्दरी थी, देवाप्सरा सदृश और सभी अंगों से सम्पूर्ण। उसके मन में भी कभी राग उत्पन्न नहीं हुआ था। अत्यन्त ब्रह्मचारिणी थी। स्वर्ण-मूर्ति लिये घूमनेवाले उस गाँव में पहुँचे। मनुष्यों ने उस मूर्ति को देखा तो बोल उठे—"अमुक ब्राह्मण की लड़की सम्मिलहासिनी यहां किस लिए खड़ी है?"

उन मनुष्यों ने यह बात सुनी तो ब्राह्मण के घर जाकर सम्मिलहासिनी को वरा। उसने माता-पिता के पास सन्देश भेजा—"मुझे गृहस्थी से काम नहीं। मैं तुम्हारे मरने पर प्रव्रजित होऊंगी।" "लड़की! यह क्या कहती है?" कहकर उन्होंने वह स्वर्ण-प्रतिमा लेकर उसे बड़ी शान-बान के साथ विदा किया। बोधिसत्व और सम्मिलहासिनी, दोनों की इच्छा न रहते हुए भी विवाह कर दिया गया। उन्होंने एक घर में रहते हुए, एक शैया पर सोते हुए भी एक दूसरे को राग-दृष्टि से नहीं देखा। वे वैसे ही रहे, जैसे दो भिक्षु या दो ब्राह्मण एक साथ हों।

आगे चलकर बोधिसत्व के माता-पिता काल कर गये। उसने उनका शरीर-कृत्य समाप्त कर सम्मिलहासिनी को बुलाकर कहा—"भद्रे! मेरे कुल का अस्सी करोड़ धन और अपने कुल का अस्सी करोड़ लेकर इस परिवार को पाल। मैं प्रव्रजित होऊंगा।"

"आर्यपुत्र! तुम्हारे प्रव्रजित होने पर मैं भी प्रव्रजित होऊंगी। मैं तो तुम्हें नहीं छोड़ सकती।"

वे दोनों सारा धन दान कर, सम्पत्ति को थूक की तरह छोड़कर हिमालय चले गये। वहां दोनों ने तपस्वी प्रव्रज्या ली। चिरकाल तक

: ६७ :

कौआ और मोर

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व मोर की योनि में पैदा हुए। बड़े होने पर विशेष सुन्दर होकर जंगल में विचरने लगे। उसी समय कुछ बनिये दिशा-कौआ लेकर जहाज से बावेरु-राष्ट्र गये। बावेरु-राष्ट्र में पक्षी नहीं होते थे। उस राष्ट्र के जो-जो निवासी आते, उस कौवे को पिंजरे में पड़ा देखकर कहते—"इसकी चमड़ी के वर्ण को देखो, गले तक चोंच है। मणि की गोलियों जैसी आंखें हैं।" इस प्रकार कौवे की प्रशंसा करते हुए उन्होंने उन व्यापारियों से कहा—"आर्यो! यह पक्षी हमें दे दो। हमें भी इसकी जरूरत है। तुम्हें अपने राष्ट्र में दूसरा मिल जायगा।"

"तो कीमत देकर ले लो।"

"पांच कार्षापण लेकर दे दें।"

"न देंगे।"

इस प्रकार क्रमशः बढ़ाने पर सौ कार्षापण पर पहुंचे। बनियों ने कहा—"यद्यपि हमारे लिए यह बहुत उपयोगी है तो भी तुम्हारी मैत्री का ख्याल करके सौ कार्षापण लेकर दे देते हैं।"

उन्होंने उसे सोने के पिंजरे में रखा। नाना प्रकार के मछली-मांस तथा फलाफल से पाला। दूसरे पक्षियों के न होने के कारण यह दुर्गुणों से युक्त कौआ भी श्रेष्ठ-लाभी हुआ। अगली बार वे बनिये एक मोर को सिखा-पढ़ाकर साथ ले गये। जो चुटकी बजाने पर आवाज लगाता, ताली बजाने पर नाचता। जनता के इकट्ठा हो जाने पर नौका की धुर पर खड़ा होकर वह परों को झाड़कर मधुर स्वर से आवाज लगाता हुआ नाचता। मनुष्यों ने प्रसन्न होकर कहा—"आर्यो! यह सुन्दर सुशिक्षित पक्षि-राज

---

६७. बावेरु जातक। ४.४.३३९

का नाश करके इसे दरिद्र बनाऊँगा, जिससे यह दान न दे सके।"

तब उसने उसके सारा धन-धान्य, तेल, मधु, शक्कर औरतों और नौकर-चाकर को अन्तर्धान कर दिया। दान-प्रबन्धकों ने आकर कहा—"स्वामी! दानशालाएं भी खाली हो गईं। जहां जो रखा था, कहीं कुछ नहीं दिखाई देता।" सेठ ने कहा—"दान-उच्छेद मत होने दो, खर्चा यहां से ले जाओ।" उसने भार्या को बुलाकर कहा—"भद्रे! दान चालू कराओ।"

उसने सारा घर खोजा। उसे आधे मासे भर भी कहीं कुछ दिखाई नहीं दिया। बोली—"आर्य! जो वस्त्र हम पहने हैं, उन्हें छोड़ कहीं कुछ नहीं दिखाई देता। सारा घर खाली है। सात रत्नों से भरे कोठों के द्वार खुलवाने पर भी कुछ न दिखाई दिया।" सेठ और उसकी भार्या को छोड़ दूसरे दास, नौकर-चाकर भी नहीं दिखाई दिये।

उसने फिर भार्या को सम्बोधित किया—"भद्रे! दान नहीं बन्द किया जा सकता। सारे घर में खोजकर कुछ अवश्य निकालो।"

उसी समय घसियारा दराँती, बहंगी और घास बांधने की रस्सी दरवाजे के अन्दर फेंककर भाग गया। सेठ की भार्या ने वही लाकर दिया—"स्वामी! इन्हें छोड़कर घर में और कुछ नहीं दिखाई देता।" सेठ ने कहा—"भद्रे! इससे पहले मैंने कभी घास नहीं काटी है; लेकिन आज घास छीलकर, बेंचकर यथायोग्य दान दूंगा।" दान देना बन्द न हो जाय, इस डर से वह दराँती, बहँगी और रस्सी लेकर, नगर से निकलकर घास की जगह पर गया। वहां घास छीलकर दो ढेरियां बांधी। बहंगी पर रखकर नगर में बेंचने लाया। उसने सोचा कि "दाम का एक हिस्सा हमारे लिए होगा और दूसरे हिस्से को दान देंगे।" नगर-द्वार पर घास बेंचने से उसे जो मासक मिले, उनका एक हिस्सा उसने याचकों को दे दिया। याचक बहुत थे। 'मुझे भी दें, मुझे भी दें' कहकर चिल्लाने लगे। दूसरा हिस्सा भी देकर भार्या-सहित उस दिन वह निराहार ही रहा।

: ६९ :

सन्धिभेद

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व उसके पुत्र होकर जन्मे। बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प ग्रहण कर पिता के मरने पर धर्मानुसार राज्य करने लगे।

उसी समय एक ग्वाला जंगल में गौवें चराकर वापिस लौटते समय एक गाभिन गौ को भूल, जंगल में छोड़, लौट आया। उस गाय की एक सिंहनी से दोस्ती हो गई। वे दोनों पक्की दोस्त हो एक जगह चरती थीं। आगे चलकर गौ ने बछड़े को और सिंहनी ने शेर के बच्चे को जन्म दिया। वे दोनों कुलागत मैत्री के कारण पक्के दोस्त हो इकट्ठे रहते थे।

एक जंगली आदमी ने जंगल में दाखिल होकर उनकी मैत्री देखी। जब उसने जंगल में पैदा हुआ सामान ले जाकर राजा को दिया तो राजा ने पूछा—"मित्र! तूने जंगल में कोई आश्चर्य की बात देखी?"

"देव! और तो कुछ नहीं देखा, एक सिंह और एक बैल को परस्पर मित्र हो साथ चरते देखा है।"

"इनमें तीसरा आ मिलने पर विपत्ति आयेगी। जब इनमें किसी तीसरे को देखे तो मुझे कहना।"

"देव! अच्छा।"

जंगली आदमी के वाराणसी जाने पर एक गीदड़ बैल और सिंह की सेवा में रहने लगा। जंगली आदमी ने जाकर उन्हें देखा। सोचा—"अब तीसरे के आ मिलने की बात राजा से कहनी चाहिए।" वह नगर को गया। गीदड़ ने सोचा—"सिंह और बैल के मांस को छोड़कर दूसरा कोई ऐसा मांस नहीं है जिसे मैंने न खाया हो। इनमें फूट डालकर इनका मांस खाऊंगा।" उसने दोनों में फूट डालना शुरू किया—"यह तुझे ऐसा कहता है, यह तुझे

---

६९. सन्धिभेद। ४.२.३४९

उसके बड़े होने पर उसका पितामह मर गया। उसका पिता अपने पिता के मरने से शोकाकुल हो गया। उसने श्मशान से हड्डियाँ लाकर अपने उद्यान में मिट्टी का स्तूप बनाया। उन हड्डियों को उस स्तूप में रखा। फिर समय-असमय स्तूप की पुष्पों से पूजा करता। चैत्य के चारों ओर चक्कर काटता हुआ रोता-पीटता। न स्नान करता, न खाता, न खेती का काम देखता।

यह देख बोधिसत्व ने सोचा—"अप्पा के मरने के बाद पिता शोकातुर है। मुझे छोड़ और कोई इसे नहीं समझा सकता। एक उपाय से इसका शोक दूर करूंगा।" उसने गांव के बाहर एक मरा बैल देखा और घास-पानी ले उसके सामने करके कहने लगा—"खा, खा,—पी, पी।" जो कोई आता, उसे देखकर कहता—"सुजात! क्या पगले हो? मरे हुए बैल को घास-पानी देते हो?" वह कुछ उत्तर न देता। उन्होंने उसके पिता से जाकर कहा—"तेरा पुत्र पगला गया है। मरे बैल को घास-पानी देता है।" यह सुन गृहस्थ का पितृ-शोक जाता रहा। उसकी जगह पुत्र-शोक उत्पन्न हो गया। उसने जल्दी-जल्दी आकर पूछा—

"तात सुजात! घास को लेकर निष्प्राण, बूढ़े बैल के सामने 'खा,खा,—पी, पी' क्यों कहता है? कहीं अन्न-पानी से मरा बैल जी उठता है? तू तो पण्डित है, यह मूर्ख की तरह क्यों विलाप करता है?"

बोधिसत्व ने कहा—

"उसका सिर वैसे ही है, उसके हाथ-पाँव, कान और पूंछ वैसे ही हैं, इसलिए मैं सोचता हूं कि शायद बैल जी उठे। लेकिन अप्पा का न तो सिर दिखाई देता है, न हाथ-पैर दिखाई देते हैं। क्या तुम भी दुर्मति नहीं हो, जो हड्डियों पर मिट्टी का स्तूप बनाकर रोते हो?"

यह सुन बोधिसत्व के पिता ने सोचा—"मेरा पुत्र पण्डित है। इहलोक तथा परलोक-कृत्य, दोनों जानता है। मुझे समझाने के लिए ही इसने यह किया है।" वह बोला—"तात सुजात पण्डित! मैं समझ गया कि सभी संस्कार अनित्य हैं। पिता का शोक-हरण करनेवाले पुत्र को ऐसा ही होना चाहिए।" उसने पुत्र की प्रशंसा करते हुए कहा—

पिङ्गिप नाम का कठोर, परुष एक पुरोहित था। उसने ऐश्वर्य के लोभ से सोचा—"मैं इस राजा द्वारा सकल जम्बूद्वीप के सारे राजा पकड़वाऊं। ऐसा होने पर यह एकछत्र राजा होगा और मैं एक ही पुरोहित।" उसने राजा को अपनी बात समझाई।

राजा बड़ी सेना के साथ निकला। एक राजा के नगर को घेरकर उसे पकड़ लिया। इसी प्रकार एक-एक करके सारे जम्बूद्वीप के राज्य जीत लिये। तब हजार राजाओं के साथ तक्षशिला का राज्य लेने के लिए वहां पहुंचा। बोधिसत्व ने नगर की मरम्मत करा उसे ऐसा बना दिया कि दूसरे उसका ध्वंस न कर सकें।

वाराणसी-राज भी गंगा नदी के तट पर बड़े वट-वृक्ष के नीचे, कनात बिछाकर, उस पर चंदवा तनवाकर, उसके नीचे शैया बिछवाकर रहने लगा। जम्बूद्वीप के हजार राजाओं को जीतकर भी तक्षशिला को न जीत सका। तब पुरोहित से पूछा—"आचार्य! हम इतने राजाओं के साथ आकर भी तक्षशिला नहीं ले सके। क्या करना चाहिए?"

"महाराज! हजार राजाओं की आँखें निकाल, उन्हें मार, कोख चीर, पाँच प्रकार का मधुर-मांस ले इस वट-वृक्ष पर रहनेवाले देवता की बलि दें। आँतों की बत्ती से वृक्ष को घेरकर लहू के पंचांगुली चिह्न लगायें। इस प्रकार शीघ्र ही हमारी जय होगी।"

राजा ने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। कनात के अन्दर महायोद्धा मल्लों को रखा। फिर एक-एक राजा को बुलवा, दबवाकर, बेहोश करवा आँखें निकलवाकर मरवा डाला। मांस लेकर लाशें गंगा में बहा दी गयीं। फिर उपरोक्त विधि से बलि चढ़ा, बलि-भेरी बजवाकर युद्ध के लिए निकला। एक यक्ष आया और राजा की दाहिनी आँख निकालकर ले गया। बड़ी वेदना हुई। पीड़ा से बेहोश हो वह आकर वट-वृक्ष के नीचे बिछे आसन पर चित पड़ रहा।

उस समय एक गीध ने एक तीक्ष्ण सिरेवाली हड्डी लेकर, वृक्ष की शाखा पर बैठ, मांस खाकर गिरा दी। हड्डी की नोक आकर राजा की

वत रखो, मरण-स्मृति की भावना करो, अपने मरण का ख्याल करो, प्राणियों का मरना निश्चित है, जीना अनिश्चित है, सभी संस्कार अनित्य हैं, क्षय-व्यय स्वभाववाले हैं। रात-दिन अप्रमादी होकर विचरो।"

वे उपदेश ग्रहण कर अप्रमादी हो, मरण-स्मृति की भावना करते थे।

एक दिन बोधिसत्व खेत पर जाकर हल चला रहे थे। पुत्र कूड़ा निकालकर जला रहा था। उसके पास एक बिल में विषैला सांप था। धुआं उसकी आंखों में लगा। उसने क्रोधित हो, निकलकर चारों दांत गड़ाकर उसे डस लिया। वह मरकर गिर पड़ा। बोधिसत्व ने उसे गिरा देखा तो बैलों को रोक दिया। उठा लाकर एक वृक्ष के नीचे लिटा कपड़े से ढक दिया। वह न रोया न चिल्लाया। इस प्रकार अनित्यता का विचार कर कि "टूटने के स्वभाववाला टूट गया, मरण स्वभाववाला मर गया, सभी संस्कार अनित्य हैं, मरणशील हैं," वह हल चलाने लगा।

उसने खेत के पास से जानेवाले एक विश्वस्त आदमी को देखकर पूछा—"तात! घर जाते हो?"

"हां।"

"तो हमारे घर जाकर ब्राह्मणी को कहना कि आज पूर्व की तरह दो जनों का भोजन न लाकर एक ही जने का भोजन लाये। पहले अकेली दासी ही भोजन लाती थी, आज चारों जने शुद्ध वस्त्र पहनकर हाथ में सुगन्धित-फूल लिये आयें।"

उसने "अच्छा" कहकर ब्राह्मणी से वैसे ही जा कहा।

"तात! यह सन्देश तुझे किसने दिया?"

"आर्ये! ब्राह्मण ने।"

वह जान गई कि "मेरा पुत्र मर गया है"; किन्तु उसे कम्पन मात्र भी नहीं हुआ। इस प्रकार सुसंयत चित्तवाली ब्राह्मणी ने स्वच्छ वस्त्र पहन, हाथ में सुगन्धित फूल ले, आहार लिया और बाकी लोगों के साथ खेत पर पहुंची। कोई भी न रोया न चिल्लाया। बोधिसत्वने जहाँ पुत्र पड़ा था, वहीं

छाया में बैठ कर खाया। भोजनान्तर सबने लकड़ियाँ लेकर चिता पर रखीं। गन्ध-पुष्पों से पूजा कर आग लगाई। किसी की आँख से एक बूंद भी आँसू नहीं गिरा। सभी ने मरणानुस्मृति का अभ्यास किया था। उनके शील के तेज से शक्र का भवन गरम हो गया।

उसने विचार किया—"कौन है जो मुझे मेरे स्थान से च्युत करना चाहता है?" उसे पता लगा कि इनके गुण-तेज से ही उसका आसन गरम हुआ है। वह प्रसन्न हुआ और सोचा कि "मुझे इनके पास जाकर इनसे सिंह-घोषणा करानी चाहिए।" सिंह-घोषणा कराके इनका घर सात रत्नों से भर देना चाहिए। वह शीघ्रता से वहाँ पहुँचा और श्मशान के पास पर एक ओर खड़ा होकर बोला—"तात! क्या करते हो?"

"स्वामी! एक मनुष्य को जला रहे हैं।"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम एक आदमी को नहीं जला रहे हो, किन्तु एक मृग को मारकर पका रहे हो।"

"नहीं स्वामी! मनुष्य को ही जला रहे हैं।"

"तो किसी वैरी मनुष्य को जला रहे होगे?"

"स्वामी! वैरी पुरुष नहीं, औरस पुत्र है।"

"तो अप्रिय पुत्र होगा।"

"स्वामी! मेरा अति प्रिय पुत्र है।"

"तो क्यों नहीं रोते हो?"

उसने न रोने का कारण बताते हुए कहा—"जिस प्रकार साँप अपनी केंचुली छोड़ कर चला जाता है, उसी प्रकार [illegible] चला जाता है। इस प्रकार [illegible] जलाया जाता है तो यह रिश्तेदारों के रोने को नहीं जानता है। [illegible] शोक नहीं करता हूँ। इसकी जो गति होनी थी, हो गई।"

शक्र ने बोधिसत्व की बात सुन ब्राह्मणी से पूछा—"अम्म! [illegible] क्या होता था?"

"स्वामी! [illegible]

'पाला-पोसा पुत्र है।'

'माँ! पिता चाहे पुरुष होने के कारण न रोये; किन्तु माता का हृदय कोमल होता है, तू क्यों नहीं रोती?"

उसने न रोने कारण कहा—

"बिना बुलाये वहाँ से आया, बिना आज्ञा लिये यहाँ से गया। जैसे आया, वैसे चला गया। उसमें अब रोना-पीटना क्या? जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारों के रोने-पीटने को नहीं जानता। इसीलिए मैं उसका सोच नहीं करती हूं। जो उसकी गति होगी, वहां गया।"

तब शक्र ने बहन से पूछा—"अम्म! तेरा वह क्या होता था?"

"स्वामी! मेरा भाई होता था।"

"अम्म! बहनों का भाई से प्रेम होता है। तू क्यों नहीं रोती?"

"यदि रोऊँ तो कृश हो जाऊंगी। उससे मुझे क्या लाभ होगा? हमारे मित्र तथा सुहृदों को और भी अरुचि होगी। जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारों के रोने-पीटने को नहीं जानता। इसलिए मैं उसका सोच नहीं करती हूं। जो उसकी गति होगी, वहां गया।"

शक्र ने बहन की बात सुन उसकी भार्या से पूछा—

"अम्म! तेरा वह क्या था।"

"स्वामी! मेरा पति था।"

"पति के मरने पर स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, अनाथ। तू क्यों नहीं रोती?"

"जैसे बालक जाते हुए चन्द्रमा को देख उसे लेने के लिए रोता है वैसे ही उसका आचरण है जो किसी मरे हुए को रोता है। जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारों के रोने-पीटने को नहीं जानता। इसीलिए मैं उसका सोच नहीं करती हूं। जहाँ उसकी गति होगी, वहाँ गया।"

शक्र ने भार्या की बात सुन दासी से पूछा—"अम्म! तेरा वह क्या होता था?"

"स्वामी! मेरा आर्य!"

उनके पर नहीं निकले थे, जब वे उड़ नहीं सकते थे, उसी समय हजार हाथियों के साथ बोधिसत्व चरते-चरते वहाँ आ पहुँचे। उसे देख लटुकिका ने सोचा—"यह हस्ति-राज मेरे बच्चों को कुचलकर मार देगा। हन्त! मैं इन बच्चों की रक्षा के लिए इससे धार्मिक याचना करूं।" उसने दोनों पंख जोड, उसके आगे खड़ी होकर कहा—

"हे अरण्यक! हे यूथपति! हे यशस्वी! हे साठे हाथी! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूं, मैं पंखों से तुम्हारे सामने हाथ जोडती हूँ—मुझ दुर्बल के पुत्रों का वध मत करो।"

' लटुकिके! मैं तेरे पुत्रों की रक्षा करूंगा। तू चिन्ता न कर।"

वह उन बच्चों के ऊपर खडे हो गये। अस्सी हजार हाथियों के चले जाने पर लटुकिका को सम्बोधित कर कहा—"हमारे पीछे एक अकेला हाथी आता है। वह मेरा कहना नहीं मानता। उसके आने पर उससे भी प्रार्थना कर पुत्रों की रक्षा करना।" यह कह वह चला गया।

लटुकिका ने दूसरे हाथी के आने पर उससे प्रार्थना की—"हे अरण्यक! हे पर्वतवासी! हे एकचारी कुन्जर! मैं तुझे नमस्कार करती हूँ। मैं पंखों से तुम्हारे सामने हाथ जोडती हूँ—मुझ दुर्बल के पुत्रों का वध मत करो।"

"लटुकिके! तू दुर्बल है, मेरा क्या करेगी? मैं तेरे बच्चों को मारूंगा। तेरे जैसी लाखों को भी मैं बायें पैर से कुचल दूंगा।"

यह कहकर बच्चों को पांव से चूर्ण-विचूर्ण कर, उन्हें अपने मूत्र से बहाकर चिंघाडता हुआ चला गया। लटुकिका ने वृक्ष की शाखा पर बैठकर कहा—"हाथी! अभी तो तू चिंघाड़ता हुआ जाता है। कुछ दिन में मेरी क्रिया देखेगा तू नहीं जानता कि शरीर-बल से ज्ञान-बल बढ़कर है। अच्छा, तुझे जनाऊंगी।"

यह कह उसने कुछ दिन एक कौवे की सेवा की। कौवे ने प्रसन्न होकर पूछा—"तेरे लिए क्या करूं?"

"स्वामी! मैं और कुछ नहीं चाहती। केवल यही आशा करती हूं कि

राज के साथ मित्रता थी। वह नाग-राज नाग-भवन से निकलकर भूमि पर शिकार पकड़ता फिरता था। गांव के लड़कों ने उसे देखकर ढेलों तथा डण्डों से पीटा। राजा ने क्रीड़ा के लिए उद्यान जाते समय देखकर पूछा—"यह लड़के क्या कर रहे हैं?" जब सुना कि एक सर्प को मार रहे हैं तो आदमियों से कहा कि "मारने मत दो, इन्हें भगा दो।"

नागराज जीवित बचकर नाग-भवन गया। वहाँ से बहुत से रत्न लेकर आधी रात के समय राजा के शयनागार में घुसकर रत्न रख दिये। बोला—"मेरी जान तुम्हारे ही कारण बची।" उसने उसके साथ मैत्री स्थापित की। वह बार-बार जाकर राजा से भेंट करता। उसने अपनी नाग-कन्याओं में से काम-भोगों से अतृप्त एक कन्या को राजा की सेवा में रहने के लिए नियुक्त किया, साथ ही राजा को एक मन्त्र दिया कि जब उसे न देखे तब इस मन्त्र को जपे।

एक दिन राजा ने उद्यान में पहुँच नाग-कन्या के साथ पुष्करिणी में जल-क्रीडा की। नाग-कन्या ने एक जल-सर्प को देखा तो रूप बदलकर उसके साथ अनौचित्य का सेवन किया। राजा ने जब उसे नहीं देखा तो सोचा—"कहाँ गई?" मन्त्र जपने पर वह उसे अनाचार करती हुई दिखाई दी। राजा ने उसे बाँस की चपटी से मारा। वह क्रोधित होकर वहाँ से नाग-भवन पहुँची। पिता ने पूछा—"क्यों लौट आई?"

"तुम्हारे मित्र ने जब देखा कि मैं उसका कहना नहीं करती हूँ तो उसने मुझे पीठ पर मारा।"

उसने पीठ की चोट दिखाई। नाग-राज ने बिना सच्ची बात जाने ही चार नाग-तरुणों को बुलाकर भेजा—"जाओ, सेनक के शयनागार में घुस कर फुंकार से ही उसे भूसे की तरह जला दो।" वे राजा के सोने के समय उसके शयनागार में प्रविष्ट हुए। उनके प्रवेश करने के समय ही राजा देवी से बोला—"भद्रे! मालूम है, नाग-कन्या कहाँ गई?"

"देव! नहीं जानती।"

सोने की कड़छी लिये राजा को परस रही थी। वह सोचने लगी कि 'मुझे देखकर राजा हँसता है।" उसने राजा के साथ शैया पर लेटने के समय पूछा—"देव ! क्यों हँसे ?" वह बोला—"मेरे हँसने के कारण से तुझे क्या ?" लेकिन फिर जिद करने पर कह दिया।

तब वह बोली—"आप जो मन्त्र जानते हैं, वह मुझे दें।"

"नहीं दे सकता।"

वह बार-बार जिद करने लगी। राजा बोला—"यदि मैं यह मन्त्र तुझे दूँगा तो मैं मर जाऊंगा।"

"देव ! मर भी जायें तो भी मुझे दें।"

राजा ने स्त्री के वशीभूत होकर "अच्छा" कहा और सोचा—"इसे मन्त्र देकर अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊंगा।" वह रथ पर चढ़कर उद्यान गया।

उस समय शक्र ने संसार पर नजर डालते हुए यह बात देखी। उसने सोचा—"मूर्ख राजा स्त्री के लिए आग में जल मरने जा रहा है। मैं इसकी जान बचाऊंगा।" उसने 'सुजा' नामकी असुर-कन्या को लिया और वाराणसी में प्रविष्ट हुआ। वह बकरी बनी और शक्र स्वयं बकरा। उसने ऐसा संकल्प किया कि जनता उन्हें न देखे और वे रथ के आगे-आगे हो लिये। उस बकरे को राजा और रथ के घोड़े देखते थे, और कोई नहीं।

बकरे ने बातचीत पैदा करने के लिए ऐसा आकार बनाया जैसे बकरी के ऊपर चढ़ने जा रहा हो। रथ में जुते एक घोड़े ने उसे देखा तो बोला—"मित्र बकरे ! हमने सुना था कि बकरे मूर्ख होते हैं, निर्लज्ज होते हैं; लेकिन देखा नहीं था। तू छिपकर करने योग्य अनाचार को इतने जनों की नजर के सामने ही करता है। जो पहले हमने सुना था, उसका यह जो देखते हैं, उससे मेल खाता है।"

यह सुनकर बकरे ने कहा—"हे गर्दभ-पुत्र ! यह समझ कि तू भी मूर्ख है, जो रस्सियों से बँधा है। टेढ़े होंठ हैं और नीचे मुँह हैं तथा यह तेरी और भी मूर्खता है, जो मुक्त होने पर भागता नहीं है'। और तुझसे बढ़कर मूर्ख यह सेनक राजा है, जिसे तू रथ में खींचता है।"

उसने मन्त्र-लोभ से "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। राजा ने जल्लाद को बुलवाकर दोनों ओर चाबुक लगवाए। वह दो-तीन चाबुक सहने के बाद बोली—

"मुझे मन्त्र नहीं चाहिए।"

तब राजा बोला— "तू मुझे मारकर भी मन्त्र लेना चाहती थी।"

उसने उसकी कमर की चमड़ी उधड़वाकर छोड़ा। उसके बाद फिर वह कुछ नहीं बोल सकी।

Rajan Kumar Agr...

: ७५ :

फूल की गन्ध की चोरी

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प सीखा। आगे चलकर ऋषियों के ढंग से प्रव्रज्या लेकर एक पद्म-सरोवर के पास रहने लगे। एक दिन तालाब में उतरकर खिले फूल को सूंघते थे। एक देव-कन्या ने वृक्ष-स्कन्ध के विवर में खड़े होकर धमकाते हुए कहा—

"यह जो तू बिना दिये हुए कमल-फूल को सूंघता है, यह भी चोरी का एक प्रकार है। तू गन्ध-चोर है।"

तब बोधिसत्व ने प्रश्न करते हुए कहा —

"न ले जाता हूं, न तोड़ता हूं, केवल दूर से सूंघता हूं। मैं किस प्रकार गन्ध-चोर कहला सकता हूं?"

उसी समय एक आदमी उस तालाब में भिसें उखाड़ रहा था, कमल तोड़ रहा था। बोधिसत्व ने उसकी ओर इशारा करके कहा—"दूर खड़े होकर सूंघने वाले को चोर कहती है। इस आदमी को क्यों कुछ नहीं कहती, जो सब कुछ नष्ट कर रहा है?"

७५. भिस पुप्फ जातक। ६.२.२६१

सा बढ़िया भोजन करते हैं, जिससे खूब मोटाये है ?" बोधिसत्व ने उसका उत्तर देते हुए कहा—

"हे मातुल ! तू मक्खन-तेल के साथ बढिया भोजन करता है। तू किस कारण से दुबला है ?"

"हे बटेर ! शत्रुओं के बीच में रहनेवाले, उनका भोजन चुरा-चुरा कर खानेवाले, नित्य ही उद्विग्न-हृदय मुझ कौवे में शरीर की दृढ़ता कहाँ आ सकती है। पाप कर्म के कारण कौवे नित्य उद्विग्न रहते हैं। इसलिए उन्हें जो भोजन मिलता है, वह उनके शरीर को नहीं लगता। इसलिए मैं दुर्बल हूं। हे बटेर ! तू तो घास-तिनके खाता है, जिनमें कुछ स्निग्धता नहीं। तू किस कारण से मोटा है ?"

"हे कौवे ! मैं अल्पेच्छा, अल्पचिन्ता, अधिक दूर न जाना पड़े तथा जो भी मिल जाय, उसीसे गुजारा कर लेने के कारण मोटा हूँ। जो अल्पेच्छुक है, जिसे अल्पचिन्ता रूपी सुख प्राप्त है तथा जिसे अपने भोजन की मात्रा का ठीक ज्ञान है, उस आदमी की जीवन-चर्या सुख-पूर्वक चल सकती है

: ७७ :

गृद्ध-जातक

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व गीध की योनि में पैदा हुए। बड़े होने पर वह अपने बूढ़े, अन्धे माता-पिता को गुफा में रखकर गोमांस आदि लाकर पोसने लगा। उस समय वाराणसी की श्मशान-भूमि में एक निषाद ने लगभग सभी जगह गीधों को फँसाने के लिए जाल फैलाया।

एक दिन बोधिसत्व गोमांस खोजते-खोजते श्मशान में दाखिल हुआ।

---

७७. गिज्झ जातक। ६.२.३६४

वहाँ जाल में पैर फँस गये। उसे अपनी चिन्ता न थी। वह बूढ़े माता-पिता की याद कर रोने लगा—

"पहाड़ की दरार में रहनेवाले वृद्ध माता-पिता क्या करेंगे? मैं बन्धन में बँधकर नीलिय नामक चिड़ीमार के वशीभूत हो गया।"

तब चिड़ीमार-पुत्र ने गृद्धराज का विलाप सुनकर पूछा—

"हे गीध! किसके लिए विलाप करता है और क्या विचार करता है? मैंने इससे पूर्व मानुषी बोली बोलने वाला पक्षी न सुना, न देखा।"

"मैं पर्वत की दरार में रहनेवाले माता-पिता का पोषण करता था। अब जब मैं तेरे वशीभूत हो गया हूँ तो वे क्या करेंगे?"

"जो गीध सौ योजन ऊपर से कुणप को देख लेता है, वह पास से ही जाल और बन्धन को क्यों नहीं देख लेता?"

"जब मनुष्य का पराभव होनेवाला होता है तो वह पास होने पर भी जाल और बन्धन को नहीं देख पाता।"

"तो हे गीध! पर्वत की दरार में रहनेवाले अपने वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण कर। मैंने तुझे मुक्त किया। सकुशल अपने माता-पिता को देख।"

"इसी प्रकार हे चिड़ीमार! तू भी सब रिश्तेदारों के साथ [illegible] कर। मैं पर्वत की दरार में रहनेवाले वृद्ध माता-पिता का पालन करूँगा।"

बोधिसत्व मरण-दुःख से मुक्त होकर [illegible] पालना कर, मुँह भर मांस ले गये और माता-पिता को दिया।